
विदेह पेटार [४२१-५२१]
४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ...५२१
विदेह लिटरेचर फेस्टीवल
WWW.VIDEHA.CO.IN
Videha Archives
Videha Archives

विदेह ४३०





विदेह मैथिली साहित्य आन्दोलन: मानुषीमिह संस्कृताम्



सम्पादक: गजेन्द्र ठाकुर।

[विदेह- प्रथम मैथिली पाक्षिक ई-पत्रिका ISSN 2229-547X Videha e-Journal (since 2000) at www.videha.co.in]

ऐ पोथीक सर्वाधिकार सुरक्षित अछि। कॉपीराइट (©) धारकक लिखित अनुमतिक बिना पोथीक कोनो अंशक छाया प्रति एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा यांत्रिक, कोनो माध्यमसँ, अथवा ज्ञानक संग्रहण वा पुनर्प्रयोगक प्रणाली द्वारा कोनो रूपमे पुनरुत्पादन अथवा संचारन-प्रसारण नै कएल जा सकैत अछि।

(c) २०००- २०२५. सर्वाधिकार सुरक्षित। भालसरिक गाछ जे सन २००० सँ याहूसिटीजपर छल http://www.geocities.com/.../bhalsarik_gachh.html , http://www.geocities.com/ggajendra आदि लिंकपर आ अखनो ५ जुलाइ २००४ क पोस्ट http://gajendrathakur.blogspot.com/2004/07/bhalsarik-gachh.html केर रूपमे इन्टरनेटपर मैथिलीक प्राचीनतम उपस्थितक रूपमे विद्यमान अछि (किछु दिन लेल http://videha.com/2004/07/bhalsarik-gachh.html लिंकपर, स्रोत wayback machine of https://web.archive.org/web/*/videha 258 capture(s) from 2004 to 2016- http://videha.com/ भालसरिक गाछ-प्रथम मैथिली ब्लॉग / मैथिली ब्लॉगक एग्रीगेटर)।

ई मैथिलीक पहिल इंटरनेट पत्रिका थिक जकर नाम बादमे १ जनवरी २००८ सँ 'विदेह' पड़लै। इंटरनेटपर मैथिलीक प्रथम उपस्थितिक यात्रा विदेह- प्रथम मैथिली पाक्षिक ई पत्रिका धरि पहुँचल अछि, जे http://www.videha.co.in/ पर ई प्रकाशित होइत अछि। आब "भालसरिक गाछ" जालवृत्त 'विदेह' ई-पत्रिकाक प्रवक्ताक संग मैथिली भाषाक जालवृत्तक एग्रीगेटरक रूपमे प्रयुक्त भऽ रहल अछि।

(c)२०००- २०२५. विदेह: प्रथम मैथिली पाक्षिक ई-पत्रिका (since 2000) ISSN 2229-547X VIDEHA. सम्पादक: गजेन्द्र ठाकुर। Editor: Gajendra Thakur. In respect of materials e-published in Videha, the Editor, Videha holds the right to create the web archives/ theme-based web archives, right to translate/ transliterate those archives and create translated/ transliterated web-archives; and the right to e-publish/ print-publish all these archives. रचनाकार/ संग्रहकर्त्ता अपन मौलिक आ अप्रकाशित रचना/ संग्रह (संपूर्ण उत्तरदायित्व रचनाकार/ संग्रहकर्त्ता मध्य) editorial.staff.videha@zohomail.in कैं मेल अटैचमेण्टक रूपमेँ पठा सकैत छथि, संगमे ओ अपन संक्षिप्त परिचय आ अपन स्कैन कएल गेल फोटो सेहो पठाबथि। एतऽ प्रकाशित रचना/ संग्रह सभक कॉपीराइट रचनाकार/ संग्रहकर्त्ताक लगमे छन्हि आ जतऽ रचनाकार/ संग्रहकर्त्ताक नाम नै अछि ततऽ ई संपादकाधीन अछि। सम्पादक: विदेह ई-प्रकाशित रचनाक वेब-आर्काइव/ थीम-आधारित वेब-आर्काइवक निर्माणक अधिकार, ऐ सभ आर्काइवक अनुवाद आ लिप्यंतरण आ तकरो वेब-आर्काइवक निर्माणक अधिकार; आ ऐ सभ आर्काइवक ई-प्रकाशन/ प्रिंट-प्रकाशनक अधिकार रखैत छथि। ऐ सभ लेल कोनो रॉयल्टी/ पारिश्रमिकक प्रावधान नै छै, से रॉयल्टी/ पारिश्रमिकक इच्छुक रचनाकार/ संग्रहकर्त्ता विदेहसँ नै जुड़थु। विदेह ई पत्रिकाक मासमे दू टा अंक निकलैत अछि जे मासक ०१ आ १५ तिथिकेँ www.videha.co.in पर ई प्रकाशित कएल जाइत अछि।

Font/ Keyboard Source: https://fonts.google.com/ , https://github.com/virtualvinodh/aksharamukha-fonts , https://keyman.com/

These are print-on-demand books, send your queries to editorial.staff.videha@zohomail.in. The eBooks of some of these are available for sale on Google Play [(c) Preeti Thakur, sales.videha@gmail.com], send your queries to sales.videha@gmail.com. The contents and documents e-published by Videha (since 2000) ISSN 2229-547X VIDEHA are periodically being checked for accessibility issues. People with disabilities should not have difficulty accessing these contents/ documents.

© Preeti Thakur (sales.videha@gmail.com) Cover design: AUM GAJENDRA THAKUR

VIDEHA:430

 समानान्तर परम्पराक विद्यापति- चित्र विदेह सम्मानसँ सम्मानित श्री पनकलाल मण्डल द्वारा।

मैथिली भाषा जगज्जननी सीतायाः भाषा आसीत्। हनुमन्तः उक्तवान- मानुषीमिह संस्कृताम्।

अनुक्रम

[विदेह ४३० म अंक १५ नवम्बर २०२५ (वर्ष १८ मास २१५ अंक ४३०)]

ऐ अंकमे अछि:-

पद्य

Maithili Literature in English Translation



१.१.अंक ४२९ पर टिप्पणी

विदेह ४२९ म अंक पर पाठकीय मन्तव्य
नबो नारायण मिश्र

श्री आशीष अनचिन्हार जी द्वारा मोटाइ पर व्यंग्य बहुत सटीक अछि! हार्दिक शुभकामना।

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in पर पठाउ।

गद्य

१.१.कल्पना झा-मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान -17

कल्पना झा- मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान -17



कल्पना झा

(उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास' साहित्य अध्येता, आलोचक एवं कथाकार)

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान -17

अनुवादक 'व्यास' जी

'अनुवाद' मात्र शब्दक परिवर्तन नहि। माने एक भाषाक शब्दक स्थान पर दोसर भाषाक शब्द लिखि देनाइ 'अनुवाद'क प्रक्रिया नहि। अपितु ई एकटा सृजनात्मक कार्य अछि। जटिल प्रक्रिया होइत छै 'अनुवाद'क। जतेक सहज बुझना जाइत छै लोक कैँ, ततेक सहज काज छै नहि ई अनुवाद कार्य। मूल रचनाक आत्मा, भाव आ शिल्प, सभ किछु कैँ ध्यान राखैत, दोसर भाषा मे ओहि सभ तत्व कैँ जीवन्त राखए पड़ैत छै। कहबाक माने, नीक अनुवादक होएब सहज नहि। श्रमसाध्य काज अछि ई। किछु लोक तँ अनुवाद कार्य कैँ मूल रचना सँ बेसी दुरूह कार्य मानैत छथि। अनुवाद विभिन्न भाषाभाषी समुदायक बीच सामाजिक-सांस्कृतिक सेतुक काज करैत अछि। आ तैँ साहित्यिक कृति सभक अनुवाद आवश्यक अछि, जाहि सँ कोनो महत्वपूर्ण कृति अलग-अलग भाषा आ सांस्कृतिक पृष्ठभूमिक लोक धरि पहुँचि सकए। ज्ञान आ कलाक संरक्षण संभव भ' सकए। विकास भ' सकए।

अनुवादकक समक्ष कइअक तरहक चुनौती मुह बओने ठाढ़ रहैत अछि। भाषाक विषमता, सांस्कृतिक संदर्भ, भाव-संप्रेषण आ व्याकरण आदि, सभ किछु केर ध्यान राखब आवश्यक रहैत छै एकटा अनुवादक कैँ। संयोगवश कनिके टाक साहित्यिक यात्रा मे हमरहु एकटा मैथिली पोथीक अनुवाद हिन्दी मे करबाक अवसर भेटि चुकल अछि। तैँ हम बुझि सकैत छी/बुझैत छी, एहि प्रक्रिया मे 'की' आ 'केहन' चुनौतीक सामना करए पड़ैत छै। 'व्यास' जीक रचना-संसार पर नजरि खिराएब तँ सात टा पोथी अनुवादेक भेटत। आ सभटा निस्सन अनुवाद सभ छनि। स्तरीय अनुवाद। माने जतबा मूल रचना छनि हुनकर, बुझू ततबा अनुवादो कार्य कएलनि ओ। 'व्यास' जी द्वारा अनूदित पोथीक लिस्ट देखल जाए -

श्रीमद्भगवद्गीता -1963
रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम -1966
बाभनक बेटी -1967
विप्रदास -1977
स्तोत्राञ्जलि -1980
दो पत्र -1984 स्वरचित मैथिली लघु उपन्यास "दू पत्र"क हिन्दी अनुवाद
श्रीकान्त प्रथम 'पर्व' - 1997
उक्त सभटा अनूदित प्रकाशित पोथी सँ पहिने विद्यार्थीए जीवन सँ 'व्यास' जी किछु अंग्रेजी कविता सभक मैथिली अनुवाद रहरहाँ करैत रहैत छलाह। माने जहिना 'व्यास' जी विद्यार्थीए जीवन सँ 'व्यास' बनि गेल छलाह, (केवल उपनामे मे नहि, वैचारिकतामे सेहो (तहिना विद्यार्थीए जीवन सँ ओ अनुवादक सेहो बनि गेल छलाह। हमर अनुमान अछि जे हुनकर पसिनक काज छलनि प्रायः अनुवाद करब। मनलग्गू काज।
पहिल अनूदित पोथी जे प्रकाशित भेलनि 'व्यास' जीक, से छलनि श्रीमद्भगवद्गीता। संस्कृतक ज्ञान सेहो नीक छलनि 'व्यास' जी कैँ। संस्कृत आ मैथिली दुनू भाषा पर नीक पकड़ छनि अनुवादकक, से स्पष्ट परिलक्षित होएत अनूदित पोथी श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ैत काल। वेदव्यास रचित एहि महत्वपूर्ण पोथीक अनुवाद करैत भाव अक्षुण्ण रखबाक प्रयासे मात्र नहि देखा पड़त, ओहि प्रयास मे पूर्णतः सफल होइत देखा पड़ताह अनुवादक 'व्यास' जी।
आब गप्प दोसर अनूदित पोथी रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम पोथीक। 'व्यास' जी रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम पोथीक भूमिका लिखैत कहने छथि जे कोना आ कतेक मशक्कत क' ओ एहेन

स्तरीय अनुवादक पोथी पाठकक सोझाँ परसि सकलाह। हुनकर कहब छनि, जे ओ अपन अनुवाद मे "रुबाइ"क मर्यादाक रक्षा करबाक भरसक प्रयास कएने छथि। संगहि यत्र-तत्र पद्य सभहिक मात्रा ओ आकार मे किछु विभिन्नता आनि क्रम-शैथिल्य- 'मोनोटोनी' हटएबाक सेहो प्रयास कएलनि अछि। पद्यानुवाद मे यथासम्भव भाव एवं अर्थ कैं अक्षुण्ण रखबाक प्रयत्न करैत कतहु-कतहु देश-कालानुसारैं सौन्दर्य अनबाक हेतु किछु परिवर्तन सेहो करए पड़लनि अछि 'व्यास' जी कैं, से ओ स्वयं स्वीकार कएलनि अछि। उक्त अनूदित पोथी "रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम"क संदर्भ मे एकटा गप्प कहब आवश्यक बुझना जाइत अछि। असल मे बहुभाषाविद् डॉ .अमरनाथ झाक इच्छा रहनि मैथिली मे" ओमर खैयाम"क पद्यानुवाद होअए। ई बात रमानाथ बाबू कहियो गप्पक प्रसंग मे कहने छलथिन 'व्यास' जी कैं। आ हुनकहि बातक मान राखैत 'व्यास' जी "रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम "पोथीक सृजन कएलनि। एहि पोथी मे 'ओमर खैयाम'क लगभग ८00 सँ ।200 (संख्या मे मतैक्य नहि छनि शोधकर्ता लोकनिक (रुबाइ कैं 75 पद मे समेटल गेल अछि। एहि पोथी मे "ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार -किछु परिचय "शीर्षक सँ लिखल गेल 'ओमर खैयाम' सँ जुड़ल बहुत तथ्यपरक बातक चर्चा अछि, जे जिज्ञासु पाठकक मोन-प्राण लेल नीक खोराक कहल जा सकैछ। समग्रता मे कही तँ पठनीय ओ संग्रहणीय अछि ई अनूदित पोथी रुबाइयात-ए-ओमर खैयाम।

'व्यास' जी द्वारा अनूदित तेसर पोथी "बाभनक बेटी "बङ्गलाक प्रसिद्ध लेखक शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक लोकप्रिय उपन्यास 'बामुनेर मेये'क मैथिली अनुवाद थिक। चूंँकि मैथिल समाज मे सेहो बहु-

विवाहक कुप्रथा छलए एक समय मे, आ बङ्गलाक सामाजिक व्यवस्था सँ अपना सभक साम्यता रहल अछि, तेँ एहि बङ्गला उपन्यासक कथानक मैथिली-भाषी पाठक कैँ रोचक लागि सकैत छनि, से सोचि उक्त उपन्यासक मैथिली अनुवाद करबाक विचार अएलनि 'व्यास' जीक मोन मे। सन् 1952 मे कएल एहि बङ्गला पोथीक अनुवाद 1954 मे धारावाहिक रूप मे "मिथिला मिहिर "मे प्रकाशित भेल छल। जकरा बाद मे) 1967 मे (बहुत लोकक आग्रह पर पुस्तक रूप मे प्रकाशित करबओलनि 'व्यास' जी। अविकल अनुवादक चेष्टा कएलो उत्तर मैथिल समाज कैँ ध्यान मे राखैत कतहु-कतहु किछु-किछु बदलाव करए पड़लनि, से अनुवादक स्वयं स्वीकार कएलनि अछि। नाम ओ उपाधि मूलहि रहए देलनि। एकर पाछाँ कारण ई जे एक-आध बात एहि पोथी मे एहन वर्णित अछि जे मैथिल-ब्राह्मण समाज मे ग्राह्य नहि भ' सकैत अछि। तेँ एहन मे मिश्र, झा, पाठक, करब उचित नहि बुझना गेलनि 'व्यास' जी कैँ। मैथिलक मर्यादा पर आघात भ' सकैत अछि, से सोचि बनर्जी, चटर्जी, आदि रहए देलनि अछि। सन् 1920 मे प्रकाशित शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक लोकप्रिय उपन्यास 'बामुनेर मेये'क विभिन्न भाषा मे अनुवाद पहिनहि भ' चुकल छलए। जे एहि उपन्यासक लोकप्रियता मे बढ़ोतरीक कारण रहल। आ तेँ मैथिली मे अनुवाद करबाक इच्छा जागृत भेलनि 'व्यास' जीक मोन मे।

'व्यास' जी द्वारा अनूदित चारिम पोथी "विप्रदास "सेहो शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक एकटा उत्कृष्ट बङ्गला उपन्यास छनि। बङ्गला पोथीक नाम सेहो छलए "विप्रदास "माने मैथिली अनुवाद आ मूल पोथी, दुनूक नाम एक्कहि। "विप्रदास "नायक प्रधान उपन्यास अछि। साहित्य सृजन करैत उदात्त चरित्र-चित्रणक पक्षधर

रहलाह 'व्यास' जी। पक्षधर रहलाह कहब प्रायः अनुचित होएत, उदात्त चरित्र-चित्रण करब हुनका पसिन छलनि, से कहल जा सकैछ। जेहन ओ स्वयं छलाह। उदात्त चरित्रयुक्त। तेहने चरित्रक चित्रण अछि विप्रदास पोथी मे। आ तैं 'व्यास' जीक मोन लोभाएल हेतनि एहि पोथीक अनुवाद करबाक लेल।

अगिला, माने पाँचम अनूदित पोथी जे छनि 'व्यास' जीक, से छनि "स्तोत्राञ्जलि "जे सन् ।१९४० मे प्रकाशित भेल अछि। एहि स्तोत्राञ्जलि पोथी मे संकलित अछि श्रीमद्भागवतक 'श्रुति-स्तुति', 'सौन्दर्य-लहरी' एवं 'शिव-महिम्न'क मैथिली अनुवाद। आ तकरा बाद मूल संस्कृत श्लोक सेहो देल गेल अछि। सर्वविदित अछि जे हमसभ मैथिल वैष्णव, शाक्त आ शैव, तीनू छी। माने हमर सभक परम्परा रहल अछि ई। शक्तिक उपासनाक संग भोला बाबाक भक्ति आ श्रीहरि विष्णु जीक पूजन-वन्दन, सभ किछु करैत आएल छी हम सभ, मैथिलगण। एही बात कैं ध्यान मे राखि 'व्यास' जी 'श्रुति-स्तुति'क अनुवादक बाद महादेवक स्तोत्र 'शिव-महिम्न'क चयन कएलनि आ तकर बाद भगवतीक 'सौन्दर्य-लहरी'क। एहि स्तोत्र सभक अनुवाद करैत 'व्यास' जी मूल भाव कैं अक्षुण्ण रखबा मे पूर्णतः सफल रहलाह अछि। संगहि ओकर अलङ्कारिता कैं विनष्ट नहि होमए देलनि अछि। कहबाक माने अनुवादक सभ तरहैं नीक, स्तरीय अनुवाद करबा मे सफल रहलाह अछि।

'व्यास' जी द्वारा कएल गेल अनुवादक पोथी मे अगिला पोथी, माने छठम पोथी अछि "दो पत्र" स्वरचित मैथिली लघु उपन्यास "दू पत्र"क हिन्दी अनुवाद। जे ।१९८५ मे प्रकाशित भेलनि। ई तँ स्वरचित मैथिली पोथीक अनुवाद छलनि, तँ स्वाभाविके सहज रहल हेतनि ई काज। सातम अनूदित पोथी छनि श्रीकान्त (प्रथम 'पर्व') जे सन् ।१९९७ मे

प्रकाशित भेलनि। इहो पोथी शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक एकटा लोकप्रिय बङ्गला पोथी अछि, जे चारि 'पर्व' मे लिखल गेल अछि। तकरहि प्रथम 'पर्व'क अनुवाद कएलनि अछि 'व्यास' जी। एहि उपन्यास कें शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक आत्मकथा सेहो कहल जाइत छनि। ओना उक्त अनूदित पोथीक 'दू शब्द' मे 'व्यास' जी एहि बातक चर्चा कएलनि अछि जे ओ, उपन्यास लिखबाक कला मे सिद्धहस्त शरत् बाबूक एहि चर्चित उपन्यासक प्रथम आ द्वितीय 'पर्व'क अनुवाद कएलाह अछि। मुदा प्रकाशित तँ मात्र पहिल 'पर्व' भेल छनि। माने दोसर 'पर्व'क अनुवाद 'व्यास' जी कएलनि से हुनकहि कथन सँ स्पष्ट अछि। एकर मतलब दोसर 'पर्व' अप्रकाशिते राखल छनि। मुदा ओहि अनूदित दोसर 'पर्व'क की भेलनि, कतए छनि, एहि संदर्भ मे निजगुत जनतब नहि भेटि सकल हमरा। जँ कतहु सम्हारि क' राखल हेतनि, तँ आबहु प्रकाशित कएल जा सकैत अछि। शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायक लेखनी सँ बेस प्रभावित छलाह 'व्यास' जी। आ तेँ हमर अनुमान अछि, श्रीकान्त उपन्यासक दू 'पर्व'क अनुवाद कएलनि, तँ निश्चिते तेसर आ चारिम 'पर्व'क अनुवाद करबाक इच्छा सेहो छल हेतनि मुदा क' नहि सकलाह, सएह कहबाक चाही।

'व्यास' जी द्वारा अनूदित एकटा आरो पोथीक विषय मे जनतब भेटि रहल अछि। काजी नजरूल इस्लाम जे प्रसिद्धिक शिखर पर पहुँचलाह "विद्रोही "कविता सँ, हुनकहि कविता सभक अनुवाद कएलनि अछि 'व्यास' जी। ई पोथी साहित्य अकादमीक सौजन्य सँ प्रकाशित भेल अछि, एहन सुनलहुँ अछि घरक लोकक मुहेँ। ई अनुवाद पोथी हमर पढ़ल नहि अछि, तेँ एहि पोथीक संदर्भ मे विशेष किछु कहब हमर साध्य नहि। जतबा जनतब हमरा भेटल, से

एहिठाम लिखि देलहुँ अछि।

समग्रता मे देखल जाए तँ 'अनुवादक'क रूप मे सेहो 'व्यास' जी बहुत काज कएलनि आ माँ मैथिलीक चरण मे रंग-रंगक कुसुम अर्पित करैत रहलाह। 'व्यास' जी रचित अनूदित कृति सभक अध्ययन करैत कइअक बेर मोन मे आबैत अछि, एखन ओ सशरीर समक्ष रहितथि तँ हम अपन कतेक रास जिज्ञासा हुनका समक्ष राखि सकैत छलहुँ। आ संतोषजनक जवाब प्राप्त क' सकैत छलहुँ। एना अंदाजे हुनकर मनभाव बुझबाक चेष्टा नहि करए पड़ैत हमरा। खैर, जे-से। हमरा सभ लेल, माने हुनकर संततिक लेल गौरवक बात ई जे , ओ जतबा काज क' क' गेलाह से निस्सन काज मे गानल जाइत छनि। मैथिली साहित्य जगत मे जाहि मान-सम्मानक संग समादृत छथि 'व्यास' जी, से सभक भाग्य मे कहाँ!

संपादकीय सूचना-

१)रूबाइ अरबी-फारसी-उर्दूक एकटा कठिन विधा छै। एहि विधाक समग्र जानकारी प्राप्त करबाक लेल **आशीष अनचिन्हार**क पोथी "मैथिली गजलक व्याकरण ओ इतिहास" पढ़ल जा एकै।

२) एहि सिरीजक पुरान क्रम एहि लिंकपर जा कऽ पढ़ि सकैत छी-

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान-।

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान-2

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-3

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-4

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-5

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-6

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-7

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-8

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-9

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-10

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-11

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-12

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-13

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-14

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक

योगदान-15

मैथिली साहित्यमे उपेन्द्र नाथ झा 'व्यास' एवं हुनक परिवारक योगदान-16

अपन मंतव्य *editorial.staff.videha@zohomail.in* ***पर पठाउ।***

१.२.हितनाथ झा-मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-01

हितनाथ झा- मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-01



<u>हितनाथ झा</u>

(मैथिलीमे ग्रामगाथा विधाकेँ नव जीवन देनिहार, पाठकीय विधाक अगुआ। संपर्क-9430743070)

मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-01

स्त्री विमर्श ओ नारी सशक्तिकरण

प्रभातक उपलब्ध 18 अंकमे मैथिलीक रचनामे निबन्धक संख्या सभसँ अधिक अछि आ सभसँ कम कथा। निबन्धक संख्या 84, कविताक 46 , कथाक 13 आ अन्य सामग्रीक संख्या 72 अछि। एहि प्रसंग प्रसिद्ध आलोचक मोहन भारद्वाजक कहब छनि-" हमरा जनैत निबन्धक संख्याक अधिकताक कारण

थिक तत्कालीन सामाजिक- राजनीतिक परिघटनाक प्रभाव। चारिम दशक मिथिलाक लेल संक्रमण काल छल। एक दिस छल प्राचीन शिक्षा-संस्कार, मूल्य-मर्यादा आ शील-स्वभाव तँ दोसर दिस छल अंगरेज शिक्षा एवं पाश्चात्य जीवन-शैली। प्राचीनताक आग्रह बनाम नवीनताक आकर्षण ओहि समयक बहसक प्रमुख विषय छल। निबन्धमे एहि सभ विषयपर विचार करब सुलभ होइत अछि, तैँ प्रभातमे निबन्धक संख्या बेसी अछि। निबन्धोमे साहित्यिक विषयकेँ कम, सामाजिक-सांस्कृतिक विषयकेँ वैचारिक स्तरपर प्रमुखता देल गेल अछि। (सन्दर्भ : एकल पाठ-मोहन भारद्वाज)। प्रभातमे प्रकाशित स्त्री-विमर्श ओ नारी-सशक्तिकरणक जे निबन्ध अछि ओहिमेसँ किछु निबन्ध आ किछु निबन्धक अंश प्रस्तुत क' रहल छी-

स्त्री कर्त्तव्य

जनकदेव झा, कोइलख।

स्त्री के कोन रूपे जीवन व्यतीत करक चाही ? यद्यपि एहि सम्बन्धी लेख कतेक अनुभवी लेखकलोकनि लिखि चुकल छथि। (दुर्भाग्य जे एहिसँ पूर्वक प्रभातक सभ अंक नष्ट भ ' गेल अछि। -हितनाथ झा) तथापि हमहुँ अपन अल्प बुद्धिसँ किछु एहि विषयपर साहस कैल अछि, एकर जे त्रुटि होइक से विज्ञलोकनि क्षमा करथि। स्त्री लोकनिक प्रथम कर्तव्य पतिव्रत धर्म पालन करब थिकैन्ह। पातिव्रत धर्म की ? पतिक आज्ञाक पालन तथा पतिसेवा। यद्यपि सम्प्रति पति सेवा अत्यन्त कठोर कर्म भ' गेल अछि, कारण जे अशिक्षिता स्त्री द्वारा पति कहौनिहार लोकनि क्लेश पबैत छथि। ताहि संस्थाक

अनुगामिनी स्त्री लोकनि प्रत्येक गृहस्थक घर-घर पूजा पाबि रहलीह अछि। किन्तु ताहिमे हमरा जनैत पुरुष लोकनिक दोष थिकैन्ह। कहब जे की ? पुरुषक दोष की। पुरुषक दोष यैह जे शिक्षाक अर्थ बहुतो जन बुझै छथि जे अक्षर लिखय अथवा पढ़य, सैह थीक शिक्षिता। ताहू ठाम हमर कथ्य भिन्ने प्रकारक होयत। केवल लिखा-पढ़ा देवे मात्र शिक्षा नहि थीक। शिक्षाक अर्थ थीक उपदेश। उपदेश धर्म-कथाक देमक चाही। यथा सीता, सावित्री, पतिपरायण पतिव्रता सबहिमे अग्रगण्य कोना भेलाह, से सभ चरित्र विन पढ़लो स्त्री के बुझा देने बुझि सकै अछि। तैँ हेतु प्रत्येक गृहस्थ स्त्री लोकनिके दोहावली नहि पढ़ाबथि। धर्मोपदेशे पढबथिन्ह। अंध परम्परामे पड़लि महिला सब व्यवहार बदलथि। तथा अशिक्षित समाजक सुधार हो। (वर्ष-01, अंक-04, अप्रैल 1933 ई.)

किरण देवीक पतिव्रता

श्याम सुन्दर, कोइलख।

हमर भारत वर्ष एक अपूर्व देश अछि। एहि ठाम एहन-एहन सत्य घटीत घटना भेल अछि, जकरा पढ़ि शरीर रोमांचित भय उठैछ। आइ ओहि भारतवर्षक स्त्री-पुरुष बाल-बच्चा युवक-युवती अपन अपन कर्तव्यक तिलांजलि दय अकर्मण्य बनि संसारमे अपन हँसी करा रहल छी। एहि दृष्टान्त काँ पाठक-पाठिका पढ़ि अपना काँ कर्तव्य पथपर अनबाक चेष्टा करथि।

अकबर भारत वर्षक बड़ प्रसिद्ध मुगल सम्राट भय गेल छथि। हुनक

कूटनीति और विलास-प्रियता समूचा संसारमे विदित अछि। ओ राजपूत कन्या सभसँ विवाह कय हिन्दू क्षत्रियक नाम मेटेबाक भरिसक प्रयन्न केने छलाह। परन्तु महाराणा प्रतापक आगू किछु नहि चलल और अकबर कैं नाकोदम कय देने छलाह। अकबर पूर्ण बगुला भगत छलाह। अकबर हिन्दू काँ मिलेबाक हेतु कौखन हिन्दू वेश धारण कय लैत छलाह और कराठी माला धारण कय हिन्दू बनि जाइत छलाह। भीतरसँ ओ बड़ा भारी कपटी और व्यभिचारी छलाह। अकबर प्रतिवर्ष स्त्रीक वास्ते नौरोज नामक मेला लगबैत छलाह। ओहि मेला देखबाक निमित्त अपन मोसाहेबक बहु- बेटी काँ बजाय ओकरा सभकैं धोखा देबाक हेतु अपन स्त्रीअहुँ काँ मेला मे पठबैत छलाह। एतबै नहि मेला मे अपन कुटनी रखैत छलाह जे शुद्ध साध्वी पतिव्रता महिला के फुसलाय पहुँचबैत छल और ओकरा पर बलात्कार और अत्याचार करैत छल।

अकबरक दरबारमे बहुत खुशामदी और देशद्रोही राजपूत छलाह। ओही खुशामदीमे मान सिंह और बीकानेर राजा छलाह। बीकानेर नरेशक छोट भाइक नाम पृथ्वी सिंह और हुनक पत्नी किरण देवी बड़ि पति भक्ता छलीह। पृथ्वी सिंहक स्वभाव भाइ सँ एकदम विपरीत छलैन। वो सत्य बात कहबा मे ककरहुसँ नहि चूकैत छलाह। हुनका देशहित और स्वाभिमान कूट-कूट क ' भरल छल। तैं अकबर हुनका सँ नाराज भय सपत्नी नजरबंद कयने छल और एक कारण छल जे अकबर सर्वदा संदेश पठबैत छल।

अन्तमे किरण देवीकें नहि रहल गेलैन राजपूती रक्त खलबला उठलनि और अपन स्त्रीत्वक रक्षा हेतु मरबा मारबा लै दृढ़ प्रतिज्ञ

भय गेलीह। ओ सर्वदा अपना लग खंग राख' लगलीह। ओ प्रण केलनि- हम बादशाह के सत्य मार्ग पर लायब अथवा हमही एहि संसार मे रही कि अकबरे रहथि।

नौरोजक मेला लागल अछि। अकबरक कूटनी एम्हर-ओम्हर घुमि रहल अछि। भारी-भारी राजा-महाराजाक बहु-बेटी मेलाक शोभा बढ़ा रहल छथि। अकबर सेहो स्त्री वेश मे एम्हर-ओम्हर घुमि रहल छथि। किरण देवी अपना दासीक संग मेलामे पहुँचलीह।

थोड़ेक एम्हर-ओम्हर घुमलाक बाद पाछू देखथि तँ दासीक कतहु पता नहि, ओ मार्गहिमे कतौ छुटि गेलनि। आब किरण देवीक दशा विचित्र भय गेलनि। हुनक ई दशा देखि एक कुटनी आबि कहल घबराउ नहि राजमहल मे चलि राजरानी संग वार्तालाप करू हम अहाँक दासीकेँ ताकि आनि दैत छी।

किरण देवी कुटनीक बातमे पड़ि महलमे पहुँचलीह। ओहि ठामक रास्ता बड़ विचित्र, ओहिमे पहुँचैत कुटनी अलोपित भय गेल। आब किरण देवीक नेत्र खूजल। बहुत अछता-पछता बहरेबाक रास्ता ताकय लगलीह। मार्ग अन्वेषण काल एक दासी आबि आदरपूर्वक कहल- अय सखी घबराउ नहि। हम बुझैत छी अहाँ रास्ता बिसरि गेलौं। चलू हम राजरानी सँ भेट करा दिअ। घबराउ नहि। हँसू, बाजू और भय काँ कात करू।

दासीक शब्द सूनि अकचकेली। दासीक बाजब मे पुरुषक बाजब बूझि पड़लैन। परन्तु ओ वीरा छलीह, साहस केलनि। आ

बुधियारीक साथ बिदा भेलीह। थोड़ेक कालमे दुनू गोटे महलमे पहुँचलीह। ओत पहुँचैत दासी अपन छद्म वेश कात केलक। किरण देवी दासीक बदलामे अकबर कँा देखल। परन्तु किरण देवी पूर्वहि सँ सचेत छलीह। ओ अपना डाड़सँ खड्ग खींचि ठाढ़ भय गेलीह। एहि समय एहन बूझि पड़ैत छल जे साक्षात दुर्गा चंडीक रूप धय अत्याचारी कँा निहन्त करबाक निमित्त अवतीर्ण भेल छथि। किछु कालोपरांत गरजैत शब्दमे बजलीह- दुष्ट हम पहिने बुझल जे तों दासी नहि अकबर छें। और तों जाहि हेतु एहि ठाम अनलेहें सेहो जनैत छी। परन्तु स्मरण राख जे हम क्षत्राणी छी और हमर पिता चित्तौड़क राणा प्रताप सिंहक भाइ शक्ति सिंह थिकाह। रे नराधम! तोहर मुँह देखब पाप थिक। आ तोरा एहि पिपासित खड्ग सँ यमपुरी पठाय एहि वसुन्धरा कँा पवित्र करब। अकबर ई रूप देखि भयभीत भय विनती करैत कहल धन्य! किरण देवी अहाँ यथार्थ वीरमाता , वीरपत्नी और वीरकन्या छी। अहाँ पर हमर चालाकी नहि चलल।

किरण देवी फेर कहल- अरे दुष्ट! कपटी!! राजा प्रजाक धर्म पिता थीक। तों कियैक एना अनाचार अत्याचार करै छें। हम ई निश्चय क चुकल छी अपना हाथ सँ तोरा मारि एहि पृथ्वीक भार कँा हल्लुक करब। अकबर हाथ जोड़ि विनती कय कहल- अहाँकैं रामचन्द्रक सपथ थीक हमरा अहाँ नहि मारू हम अहाँक भाइ छी ओ अहाँ हमर बहीन छी।

किरण देवी कहल- तुरत तों हमर देवता- हमर पतिदेव कँा मुक्त कय दे और नौरोजक मेला उठा दे और आइ ईश्वरक सपथ खो

आइ दिनसँ स्त्रीक सतीत्व रक्षा करब।

अकबर किरण देवीक सब बात मानल और भविष्य मे धर्म सहित राज्य करबाक प्रतिज्ञा कयल। एहि तरहेँ भारतक वीर क्षत्राणी किरण देवी अपन शौर्य और साहसिक कार्य कय देखौलनि जाहिसँ एखन तक एहि संसारमे जीवित छथि। यावत काल धरि एहि संसारमे धर्म रहत जीवित रहती। (वर्ष-01, अंक 09 , सितम्बर 1933)

मिथिलामे स्त्री-शिक्षाक अभाव
केदार मणि झा, मंगरौनी।

शिक्षा की थीक ? कोनो विषयमे दक्ष होयब, ओहि विषयक मर्म पर्यन्त बूझबाक नाम शिक्षा थीक!

ई दू भागमे विभक्त भए सकैछ ? उत्तम और नीच। उत्तम शिक्षा वैह थीक जाहिसँ लोक ज्ञानी बनैत छथि, वस्तु बुझै छथि और नीक-नीक कार्य करैत छथि। नीच शिक्षा ठीक एकरे विपरीत थीक अथच त्याज्य। कोनो-, कोनो विद्वानक मत छैन्हि जे नीचो शिक्षा सर्वथा त्याज्य नहि। कौखन एहन अवसर अबैत अछि जाहिमे ओकरे प्रयोजन पड़ैत अछि! खैर , एकर ई माने नहि जे नीचे शिक्षासँ शिक्षित रही। हँ नीचो शिक्षासँ शिक्षित रही तँ अधलाह नहि।

स्त्री- शिक्षाक ई माने नहि जे स्त्री एम.ए.क डिप्लोमा प्राप्त कए कोनो कॉलेजक प्रोफेसरे बनथि , बी.एल. पास कए इजलास पर विरोधीक प्रतिवाद करथि ? हँ, अन्यान्य स्त्री उपयोगी गुण सँ युक्त

रहितहुँ ई होइन्हि तँ सोना मे सुगंध थीक। किन्तु हुनका M. E. स्कूलमे भर्ती होयबाक पूर्व एतवा देखि लेब जरूरी छैन्हि जे हम जाहि संसारमे प्रवेश करब तेकर हम उपयुक्त छी वा नहि ? पति-परायणता, गृहकार्य-चातुर्य इत्यादि गुण हमरा मे अछि वा नहि ?

दुखक तँ विषय ई जे , जे स्त्री कँ टटका 'क' लिखैं एलैन्हि ओ भानस करबे नहि करतीह यदि करतीह तँ नहिएँ करबाक बराबरि।

"पति विहीना नाहम चाण्डाल गामिनी " वाला पिहानी प्रायः ककरो अविदित नहि ? की से लखिमा ठकुराइन मे केवल व्याकरणेक सूत्र टा निविष्ट छल ? की हुनक सदृश सती शिरोमणि अथच विदुषी भेल वा नहि ?

टीकाकार गोकुल नाथ अपना स्त्रीक संग श्लोक श्लोकबद्धे बातचीत करैत छलाह और हुनक स्त्रीयो श्लोके मे जबाबो दैत छलथीन्ह। की हुनका भानस करबाक लूरि नहि छलैन्हि ? पतिव्रता नहि छलीह ?

आइ काल्हुक समयमे जखन कि सस्कृत लुप्त प्रायः भेल जाइत अछि, अँग्रेजी में वहुतो विदुषी देख'मे अबैत छथि सेहो हमरा देशक नहि। बंगाल मद्रास इत्यादिक।

किछु दिन पूर्व सुनै छी लोक (स्त्री) गनब पर्यन्त नहि जनैत छलीह। ककरो दश तक ककरो बीस तक। बस ताही सँ समस्त आश्रमक भार चला लैत छलीह।

शिक्षा मे तँ प्रधान चीज थीक पर्दा! हमरा लोकनिक घर स्त्रीगण कैँ ततेक पर्दा जे पुरुषक कोन कथा कोनो स्त्रीगणोंसँ अकस्माते बजतीह।

आइयो- काल्हि एकदम शिक्षाक ह्रास नहि भए गेल अछि। हँ तखन एहनो सब छथि जे ककहराकैँ भूतक मन्त्र बुझि पड़ाइत छथि। (वर्ष-01, अंक-11, नवम्बर 1933 ई.)

स्त्री समाजक पतन
दिगम्बर नाथ झा

स्त्रीजाति प्राचीन समयमे पुरुष जातिकैँ असीम सहायता पहुँचबै छल। एकर अतिरिक्त स्त्रीजातिकैँ गृह कार्य मे पूर्ण अधिकार छलैक। हुनका लोकनिकैँ यथायोग्य स्वाधीनता छलनि। परा-प्रथा अज्ञात छल। विधवा स्त्री स्वेच्छानुसार पुनर्विवाह क' सकैत छल। सती-प्रथा बिलकुल प्रचलित नहि छल। बहुतो बालिका सब विद्याध्ययन करैत छल तथा अनेक प्रकारक सुन्दर प्रशंसनीय कविता करैत छल। गर्वक साथ लिख'पड़ैत अछि जे एक समय भारत वर्ष विशेषतः मिथिलाक सभ्यता उच्चतम छल। प्राचीन मिथिलाक स्त्रीक स्थानक दिग्दर्शन सँ ज्ञात होइत अछि जे ई स्त्रीक माताक सम्मानहिक फल छल जे विदेह, गौतम, याज्ञवल्क्यक मिथिला संसारक ' अध्यापिका' बुझल जाइत छलि। हजारो दृष्टान्त अछि जाहि सँ पता लगैत अछि , प्राचीन समय मे मैथिल समाजमे स्त्रीक स्थान की छल ? हमर आदर्श, विदुषी रमणी वेदक ऋचाक

रचना करैत छलीहि। गार्गी विदेहसँ वेदान्त पर वाद-विवाद कयने छलीह। भगवान शंकराचार्यसँ मिथिलाक दिग्गज विद्वान मण्डन मिश्रक धर्मपत्नी भारतीक शास्त्रार्थ संसार प्रसिद्ध अछि। जन्मदात्री, शिक्षिता, बुद्धिमती, विदुषी, वीर-प्रसवा एवं स्वस्थ छलीह। अतएव सन्तानो विद्वान, बुद्धिमान एवं स्वस्थवान होइत छलन्हि। सारांश ई जे मिथिलाक सौभाग्यतारा चमकैत छल। हिन्दू-समाजक पतनक साथ-साथ शूद्र तथा स्त्रीक स्थानक एकदम पतन भ' गेलैक। एक समय छल जखनि स्त्री लोकनि अध्ययन करै छलीह, अपन पति चुनै छलीह तथा अपन-अपन पिता-पितामहक सम्पत्तिक उत्तराधिकारिणी होइत छलीह, इत्यादि। संसार परिवर्तनशील अछि। सभ वस्तुक परिवर्तन होइत छैक। अतः क्रमशः बाल्यविवाह जारी रहल और स्त्रीक स्वाधीनताक चन्द्रमा क्रमशः अस्त भ' गेल। विधवा विवाह जे एक समय प्रचलित छल, रोकल गेल और एकर अतिरिक्त स्त्री जाति के शिक्षा देब सेहो। बन्द क ' देल गेल। क्रमशः सतीप्रथा जारी भेल इत्यादि।।

(ई आलेख प्राचीन भारत विषय पर अछि , जाहिमे सामाजिक अवस्था, हिन्दू-समाजक पतन एवं स्त्रीसमाजक पतन छल, जाहिमे एतय मात्र स्त्रीसमाजक पतन लेल गेल अछि। -हितनाथ झा)

(वर्ष-2, अंक-08, अगस्त 1934ई.)

निमन्त्रण

श्री श्रीनन्दन झा साहित्य तीर्थ

कोइलख, पुबारिटोल।

सम्प्रति मिथिला पतनक गर्तमे अछि। ई प्रायः सभक अनुभवक विषय आब भेल जाइछ। अनुदार-सँ-अनुदार अंधपरम्परा तथा रूढ़िक उपासक हृदय अवश्य उपर्युक्त धारणाक स्वीकार करत।

एहि स्थितिमे विना अप्रिय-सत्य कहने उपायो नहि। संसार वाहिकाक सुन्दर पुष्प-लता-सम्पन्न मिथिला प्रदेशक भौतिक किम्बा मानसिक सत्यानाश केवल अनुदार-वृद्धि-समुदाय तथा अश्वपरम्परा (धार्मिक भेड़िया धसान) कयने अछि। प्राचीन-गौरवक उल्लेख करैत निष्क्रिय भेल, केवल रूढ़िपर लड़बाक चाह रखैत परम प्रसिद्ध सुवर्ण भूमि मिथिलाकेँ धर्म रहित, धन-रहित, मर्यादा-रहित तथा बल-रहित कय पुनश्च सर्वनाशी ताही जटिल विचारक उपांशुक छी, धन्य विवेक!!

किन्तु औ मिथिलाक युवक पुत्र ? की-अहाँक शरीर मिथिला भूमिमे उत्पन्न नहि भेल अछि ?
की अहाँ मैथिल नहि कहबै छी ? आह! कनेक दृष्टिपात तँ करू, देखू मिथिलातिरिक्त अन्य देशमे तत्रस्थ युवक-समाजक बलिदान तथा उत्सर्ग कैँ। केहन-केहन पतित-समाजकेँ हुनका लोकनि बात-क-बातमे सुधारि लेबाक सामर्थ्य रखै छथि, किन्तु अहाँक तँ जनु स्थितिये नहि हो!

की अहाँ मिथिलाक पुनरुत्थानकेँ असाध्य मानने छी ? यदि हँ, तँ मिथिलाक प्रति कृतघ्नता कय रहल छी- युवक-समान संसारहुक परिवर्तन कय सकै छथि- एहि पवित्र-, कथाक उन्मर्याद कय रहल छी। अपना समाजमे धार्मिक- अन्धता एकमात्र सकल अवनतिक

कारण थिक। अतः अविलम्ब-बद्ध परिकर होउ, ताहि धार्मिक रूढ़िक निराकरणक हेतु क्रान्ति तँ करू।

क्रान्ति कहियो करहिक हयत। आह सहृदय युवक, वीर युवक समाज। कनेक ज्ञान दृष्टिसँ देखू जे केवल अन्ध- परम्परापनक कारणो संसार-व्यापी सुधार- वर्षणक एको जलबुन्द हमरा पर नहि पड़ैछ।

कृपाकय सङ्ग-सङ्ग ई-टा धरि अवश्य ध्यानमे राखू जे आनक हितक धारण तथा अपन अहितक निराकरण हमर कर्तव्य तथा पवित्र धर्म थीक।

एक पंचवर्षीया कन्याक दृष्टान्त समक्ष राखू। ओ कोन प्रकारेँ व्यर्थ-व्यर्थ रभस दुलार तथा आलसमे समयकेँ व्यतीत करैत हानिकारक रीति-रेवाज सिखैत, काल-यापन करैछ। बहुतोक एहनि शिशुकन्याक तँ हत्या समान विषाक्त विधि-विवाहो करा देल जाइ छैक। निरक्षरा रहैत से बालबधू कोन प्रकारेँ अपूर्ण ब्रह्मचर्यक पालन करैत , शीघ्र अल्पजीवी संतानक माता बनैत , काल कवलित होइछ। अशिक्षिता रहैत ओ शिशु-कन्या प्रेमक रहस्यसँ अपरिचित दिन-राति कलह किम्बा आलसमे जीवन व्यतीत करैछ। नव-वधू अथवा ई कही स्त्री-समाजक जूताक चामहुसँ कतेक हेय अछि। वधूकेँ मूर्खा रहलय पति-समाजक मनोवेदनाक अनुभव तँ करू। असूर्यमपश्या पुत्रबधू नहिरा जाय तीर्थस्थानमे सर्वांगपश्या कन्यका भय जाथि, ई मिथिले मे दृश्य ?

औ मित्र ? अन्तरात्मासँ पूछू, कतेक पुरुष नारी-ब्रत रखबाक योग्यता रखैत छथि, तखन यदि मूर्खा एवं धर्माधिर्मक यथार्थ रहस्यसँ अनभिज्ञ कामोद्दीपनक कारणे स्त्री एक पुरुषव्रतक उल्लंघन कयलनि तँ की ओ पुरुष जकाँ क्षम्या नहि ? धन्य हमर विवेक ?

किन्तु मैथिल विधवाक समाज, जकर एक मात्र कारण बाल तथा वृद्ध-विवाह थिक, हमरा सभसँ कतेक अनादृता होइछ। ओकर स्वाभाविक मनोवेदनाअधिकाधिक प्रज्वलित करबाक प्रयास हमरा सभकेँ रहितहि अछि।

पुनश्च वनिता समाजक स्वास्थ्य तथा मानसिक प्रगति दिशि दृष्टपात करू-, हुनक विषमय जीवनक विवेचना करू। की ओ जगन्माता जानकी, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती नहि, को ओ महाशक्तिशालिनी दुर्गा नहि ?

युवक समाज ? सनातन धर्मक एक मात्र यैह अभिप्राय जे धर्मक एहन नियम जे सदैव समान भावें स्थिर रहय, कदापि देश काल पात्रानुसार सँ विकृत नहि हो ? अतः चोरी करब , निन्दा करब, हिंसा करब, परदार गमन, परपुरुष-गमन, भ्रूण-हत्या, असत्य-बाजब, दुष्टकेँ आश्रय देब प्रभृति सनातन-धर्मक शक्तिशाली स्तम्भ थिक जे सदैव सभ धर्मंमे समान भावें समादृत अछि। असमान इतर नियम स्वकपोलकल्पित थीक, जकरा अपन यथासाध्य मौलिकता रखैत देश काल पात्रानुसार सुधारमे परिवर्तन करब कर्तव्य हयत। उदाहरणार्थ यदि हम हिन्दू भय भारतारिक्त

विदेश यात्रा करी, ओ हिन्दूभाव रखैत , तकर प्रचार करैत प्रत्यागत होइ, मातृभूमिकेँ संसारसँ पैघ बूझि , मातृभाषाकेँ अपन प्राण बुझी तँ एहिसँ बढ़ि कय धर्मो नहि।

ओ समाजक एकमात्र आशास्तम्भ ? अपने ई जानि लेल जाय जे, जे जीव परमात्माक सृष्ट थिक , तकरापर हमरा अधिकार तावतहि जा धरि हम ओकर नीक करैत रहियैक- जखनहि अयमे तकर अहितक ध्यानो करब, तकरापरसँ अधिकार हटि जायत, अतः अपन, -अपन कर्ममे लीन समाजक छोट सँ छोट जाति कर्महीन पैघ सँ पैघ जातिक हेतु उच्च थिक, प्रेममात्र सम्बन्ध थिक, जकरा नैसर्गिक होमक चाही। तैँ पिताकेँ चाहियैन्हि जे ओ पुत्रक नीक करथि, पुत्र पिताक रक्षा करथि, स्वामी-स्त्रीक स्त्री स्वामीक, राजा रंकक रंक राजाक, एहिमे उँच- नीच किम्बा घृणाक लेशमात्र नहि रहक चाही।

किन्तु स्वार्थी अपन समाज तेहन जड़ भेल जाइछ जकर पारावार नहि। आवश्यकता अछि सामाजिक एक प्रगाढ़ एवं दृढ़ क्रांतिकारीक जे लाखो हास्य, उपहास्य, प्रतिक्रिया, झंझट, कष्ट, उत्सर्ग, त्याग किंवा प्राण विसर्जनहुक हेतु कटिबद्ध हो।

अतएव आइ हम एहि लेख द्वारा सम्पूर्ण मैथिल-युवक समाजक आमन्त्रण करै छी, एक वेरिक झटकमे अपने प्राचीन विचारक अहितकर (हितकरक रक्षा करैत) जंजीर कैँ तोड़ि दिअ, फेर तँ समाजमे तेहन क्रान्ति ने उठत जे नावकेँ एक भाग लगाइए क राखत।

पृथ्वी कखनहुँ कोनो वस्तु विशेष सँ खाली नहि रहैछ , चक्रव्यूह-रचनाकेँ द्रोण बुझलन्हि जे एकर भेदन कैनिहार क्यो नहि, परञ्च वीर-अभिमन्यु आबिये गेलाह, दशावतार युवत्वेमे संसारमे अखिल परिवर्तन कैलक, अन्यान्यो महात्मा जड़-समाजमे उत्पन्न भै कय सुधारिये देलन्हि।

अतः हमरा आशा अछि जे , मैथिल-युवक-समाजमे अवश्य वीर तथा विज्ञानी लोक अछि, एकमात्र अभिनिवेशक चांगुर मे ओ कुहरि रहलाह अछि, जकरा साहस कय परित्याग कय देव प्रथम कर्तव्य थीक।

सत्य तँ ई थीक जे मिथिलाक सुधार समुचित-उन्नति, मैथिल युवकक हाथमे अछि, परन्तु छथि प्रलोभनमे पड़ल अलसायल ? की हमर ई प्रार्थना अरण्यरोदन तँ ने थीक...।
(वर्ष-02, अंक-9, सितम्बर 1935 ई.)

बाल्य विवाह
राधाकान्त मिश्र 7 वां क्लास

दुःखक विषय थीक जे हमर जाति कुप्रथाक भण्डार मानल जाइत अछि। हा! जे जाति संसार भरिमे प्रतिष्ठा पयने छल, जे सभकेँ शिक्षा प्रदान करैत छल, वैह आइ अधमगतिमे अछि। आब हमर दशा कियैक नहि सुधरत ? हम कियैक नहि उन्नतिक रास्तापर अग्रसर होइत छी ? मातृभूमिक सत्य सेवक पण्डित बालकृष्ण

भट्टजी बहुतो ठीक कहि गेल छथि जे- किनको विचार अछि जे देशक उन्नति स्त्री-शिक्षा सँ होयत, क्यो कहैत छथि जे विधवा विवाहक प्रचार भेला सन्ता नीक होयत, क्यो कहैत छथि जे खैव-पीबाक कुप्रथा जँ उठा देल जाय तँ हिन्दू लोकनि स्वर्ग जा इन्द्रक आसन छीनि लेताह, क्यो कहैत छथि जे विलायत गेला सन्ता तरक्की होयत।

परन्तु हमर कहब ई अछि एहि सभसँ किछु नहि होयत। जा तक बाल्य विवाहक कुप्रथा नहि हटा देल जायत।

सर्वप्रथम हमरा लोकनिकेँ एहिपर विचार करबाक चाही जे ई बाल्य-विवाहक कुप्रथा हमरा लोकनिमे किर्येक प्रचलित भेल ?

इतिहास हमरा ज्ञात करबैत अछि जे जखन जबनक अत्याचार सँ स्त्रीक सतीत्व बाँचब असम्भव भय गेल तँ हमर आचार्य लोकनि देशकालक विचार कय बाल्य-विवाहक प्रथा चलौलैन्हि। यद्यपि एहि प्रथा सँ ओहि समयमे मान मर्यादाक थोड़ बहुत रक्षा भेल परन्तु ई आब हमर प्राण लेबाक हेतु उद्यत भय रहल अछि। एकर प्रभाव पड़ैत-पड़ैत हमर संस्कार एहन भय गेल अछि जे हम एकरा धर्मपुस्तकक आज्ञा बूझय लागल छी। जाहि घरमे सन्तान किछुओ युवा भेल, बस, हमरा लोकैनि ओकरा अपमानित बुझैत छी। हमरा लोकैनि एतेक नीच भय गेल छी जे जतबो ध्यान वृक्षक दिशि अछि, - सन्तानक दिशि ओतबो नहि।

वृक्ष लगयबाक समय एहि बातपर अत्यन्त ध्यान रहैत अछि जे वृक्ष

पुष्ट हो, ओकरा रोपबाक हेतु भूमि तैयार कयल जाइत अछि। भूमिसँ कंकड़ तथा पाथर हँटा दैत छी आओर अनेको प्रकारसँ ओकर रक्षा कयल जाइत अछि। परन्तु की हम सन्तानक किछुओ रक्षा करैत छी ? जे चेतन वृक्ष अछि, जाहिसँ चेतन फलक आशा अछि, आओर जाहिसँ अपन वंशे नहि, वल्कि देश उज्वल भय सकैछ- की ओहि सन्तानकेँ, विवाहक पूर्व विद्वान आओर पुष्ट बनायबाक हेतु यत्न करैत छी ? नहि, कथमपि नहि।

ई कुप्रथा भारी अनर्थ प्रचार कैलक अछि। समाज आओर जाति जाहि नेनासँ आनन्दित होइत छथि, ओ स्वयं छोट वयसमे विवाहक कारण वल बुद्धिकेँ गमा दैत छथि। आओर ब्रह्मचर्यक कमाप्तक कारण सँ आत्मनिर्भरता हुनका समीप तक नहि आबि सकैत छैनि।

ब्रह्मचर्य नहि तँ स्वास्थ्य, बल, तेज ओर विद्या हुनका कहाँ ?आओर जखन यैह सब नहि तँ ओ परावलम्बनक हथकड़ी नहि पहिरथि तँ की करथि ?

बालिका कम वयसमे सन्तानक जन्म देबाक कारण अनेको प्रकारक रोगसँ ग्रसित भय जाइत छथि आओर गृहस्थाश्रम दुखाश्रम भय जाइत अछि। ई बाल्य-विवाहेक कारण थीक जे हजारो विधवा-स्त्री हमरालोकनिक घरमे विलखि-विलखि कैँ रुदन करैत दिन व्यतीत कय रहल छथि।
उपर्युक्त बातपर विचार कयला सन्ता ज्ञात होइत अछि जे यदि हम अपन उन्नति चाहैत छी- यदि देशक उपकार चाहैत छी तँ हमरा एहि कुप्रथा हटेबाक यत्न करबाक चाही। आब ओहन अत्याचार नहि

अछि जे फेर ई रीत प्रचलिते रहै।

ओहि समय जाहि प्रकारेँ हमर आचार्य लोकनि देशकाल देखि क' बाल्य-विवाहक नियम बना देने छलाह ओही प्रकारेँ आबो उचित थिकैन्हि जे ' एहि समयक' आचार्य नियम बना क' बाल्य-विवाहकेँ बन्द कय देथि आओर हिन्दू शास्त्रक नियमानुसार आदर्श विवाहक रीत चलाबथि।

हमर बहुतो भाइ कहताह जे आइ काल्हि ब्रह्मचर्याश्रमक नियम पूर्ण रूपसँ पालन करबामे बहुतो कठिनता छैक आओर एहि हेतु 25 आओर 163 नियम राखब बहुत कठिन हैत। हम कठिनताकेँ स्वीकार करैत छी आओर हमर सम्मति अछि जे एहि समय कम सँ कम 19-20 वर्षमे बालकक तथा 13-14 वर्षमे बालिकाक विवाह हो। यदि अधिक वयसमे विवाह होमय लागि जायत त बाल्य-विधवाक संख्या एकदम निर्मूल भय जायत।
(वर्ष-02, अंक-12, दिसम्बर 1934 ई.)

संपादकीय सूचना-एहि सिरीजक पुरान क्रम एहि लिंकपर जा कऽ पढ़ि सकैत छी-
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-1
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-2
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-3
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-4
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-5
मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-6

मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-7

मैथिली साहित्यमे तारानाथ झा एवं हुनक परिवारक योगदान-8

अपन मंतव्य *editorial.staff.videha@zohomail.in* ***पर पठाउ।***

१.३.लालदेव कामत-अधिक पिछरल ११० उपजाइत केर सँग अन्याय



लालदेव कामत

अधिक पिछरल ११० उपजाइत केर सँग अन्याय

बिहार राज्य सँ स्व० कर्पूरी ठाकुर जी मुख्यमंत्री बनल छलाह तँ एक विषेषश काज कऽ जननायक कहेलाह। ओ पिछरल तबका' क सर्वेक्षण रिपोर्ट कैँ दू भाग पिछरा एनेक्सचर -२ आ अत्यन्त पिछरा एनेक्सचर -१ वर्ग बनाबैत आरक्षण सुविधा उपलब्ध करेलन्हि। ११० अति पिछड़ी जातिक मूल सूचिमे एनेक्सचर २ सँ किछ-किछ जातिके आनि १८ सालधरि लालू- राबड़ी सरकार आ २० साल सँ नीतीश कुमारके सरकारमे दोहन- शोषण होइत रहलैक। एहि ज्वलंत मुद्दा पर शिक्षित मूल अति पिछड़ा वर्गमे चिन्ता बढ़ल हेन।

समाजवादी डॉ० लोहिया कहल करथि " जेकर जते संख्याँ भारी , तकर ततेक सब स्तर पर हिस्सेदारी।" से आखरि बेर तीन मजगूत जाति यथा-: तेली, तमोली (चौरसिया)आओर दाँगी कैं मूल अतिपिछड़ा सूचिमे ढुकाकैं नीतीश - तेजस्वी केर समाजिक न्यायके सरकार खूब अन्याय मचेलक। हिन्दू- मुस्लिम समुदाय अतिपिछड़ा वर्गके लेल ई तीनू सबल जाईत हक-हिस्सा हड़पि लैत अछि। जहन एने०-२ म अलग सँ ऐ तीनू जाइतक लाभार्थी संख्याँ देखल जाई तँ ओ बढि-चढ़िकैं लाभ लैत देखाई। तँ एक खढयन्त्र केर तहत् मूल अतिपिछड़ा सूचिमे धकेलकैं सुविधा वंचित करैक ले ऐ तीनू जाइत कैं पैसेलक। आब जखन सरकारी नोकड़ीमे देखब तँ लागत जे १०० प्रतिशतमे ४५ प्रतिशत सीट इयह तीनू नव आगन्तुक जाति कव्जा करैत छैक। जेनाकि डाक्टर, प्रोफेसर, अभियंता आ आन सेवामे एहू संग बेसीये सीट पबैत छैक। एकटा डेटा द्रष्टव्य अछि -:

बिहार पुलिस सेवा (४३म् ,६६म् धरि) कुल अतिपिछड़ा ८७ मैं २० सीट तीनू जाति।

उप समाहर्ता (५६म् ,६५म् धरि) कुल अतिपिछड़ा सीट १०३ मैं सँ ४७ गोट इयह तीनू जाति लैत अछि। जिला परिषद अध्यक्ष पद ८ टा मैं ६ टा पर इयह तीनू काबिज भेलैक हेन। तहिना पंचायत समिति प्रमुख (२०११-२२)म ७८ टा म ४७ गोटपर आसीन भेल छैक। मेयर पद पर तीनू ठाम तेली अधिकार जमेलक य। आब तँ सन् २०२३ ई० केर वाद जातिगत आंकड़ा रिजल्ट सूचना आयोग दैते नै छै। १९९४ म अतिपिछड़ा बैंकलोक सीट अभियंताके पोस्टींग मे १०० मैं ३० सीट मुस्लिम छात्र कैं भेटल रहैक, वित्त विभाग २०१४ मैं १०४ सीटमे सेहो ३१ गोट सीट भेटल रहैक। तँ कर्पूरी जी फार्मूला

कैँ हिन्दू -मुस्लीम अतिपिछड़ा तबका अपन धरोहर बूझि कय बचेबाक आओरियानमे जुटल रहब परम आवश्यक होयत। ऐ तथ्य कैँ विशेष याचिका रूपैँ (एस.एल.पी.)सं०-३३६१४/ २०१७ द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय मे किशोरी दास , महेंद्र भारती आ प्रो० अरूण कुमार जी लड़ाय लड़ि रहल य। ऐ तीनू जातिकैँ जाहिठाम सँ आनि अतिपिछड़ा सूचिमे धकेलैके काज भेल, ओतय सँ हुनक आरक्षण अधिकार सीट कियेक ने संग आनल गेलैक से आईधरि यक्ष प्रश्न बनि ठाढ़ छै। नव सरकार ऐ गहींर विषय पर समय सँ धियान दैथि। सबसँ पहिने कांग्रेस सरकार मजबूत मोमीन (अंसारी) कैँ ऐ मैँ जोड़लक,तकरा बाद तँ जेना बाढ़ि आबि गेल होय!

अपन मंतव्य *editorial.staff.videha@zohomail.in* ***पर पठाउ।***

१.४.कुमार मनोज कश्यप- लघुकथा- ऐलीमनी



कुमार मनोज कश्यप

लघुकथा- ऐलीमनी

राधाबाबू के परिवार जेहने सुसभ्य, संस्कारी; तेहने संयत। ने उधो का देना ने माधो का लेना। परिवारक कोनो सदस्य के मुँहे कहियो कोनो बेछप अनर्गल वार्तालाप केयो सुनने नहिं हेतै। खाईत-पिबैत नोकरिहारा परिवार अपन दिन-दुनियाँ मे मस्त! समस्या एके टा छलैन .... बेटा के बियाह! बेटा नोएडा मे कोनो नीक कंपनी मे ठीक-ठाक पद पर छै, तैयो कोनो वर्तुहार आबि नै रहल छै। ऊचावर्च कतहु होईतो छै तऽ दोबारा घुरि नहिं अबैत छै। बेटा के दिनानुदिन बढ़ैत उमेर पूरा परिवार के लेल भारी चिंता के विषय बनल छलै। से चिंता एकदिन समाप्त भेलैन .... काँख तर नेना आ गाम मे ढ़िंढ़ोरा! कॉलोनीये मे मधुबनी के स्वजातीय के कन्या के सूत्र भेटलनि। कन्यागत सेहो सभ्य, संस्कारी लोक। देखा-सुनी, बात-विचार भेलनि ...... कथा दुहू पक्ष के जँचलनि आ अगिले लग्न मे शुभ-शुभ कऽ वियाह-दुरागमन सभ सम्पन्न भेल।

मुदा नहिं जानि एहि बियाह पर कोन ग्रह के वक्र दृष्टि पड़लै! कनियाँ भड़फोड़ी के पराते पूजा के नाम पर जे नैहर गेलिह से फेर ससुर लौटबा लेल साफे मना कऽ देलखिन। भाँति-भाँति के आरोप .... दहेज उत्पीड़न, गारि-गलौज, दू-भावना, बहिकीरणी सन व्यवहार, वरक केकरो आन संग अनैतिक संबंध...... की की नहिं! बहुत कोशिश भेलै दुहू पक्ष सँ, माय-बाप अन्न-पानि त्यागि देलखिन; मुदा कनियाँ टस्स स मस्स नहिं भेली आ अड़ल रहली निर्वहन हेतु पैंतीस लाख रूपया लेल। मामिला अदालत मे जइतै, बहस मे अनेरो आरोप-प्रत्यारोप, दुहू कुलक छीछालेदर .... एहि सभ सँ नीक भरमे-सरमे कोनो ब्योंत कऽ टाका देनाईये राधाबाबू के उचित बुझना गेलनि।

ओहि दिन अपन मित्र सऽ भेंट कऽ घर घुरैत काल नजरि पड़लनि गली के कोन परहक खाली मकान जाहि पर मोट आखर मे 'विक्री लेल' के तख्ती टाँगल देखबैत मित्र कहने रहथिन मकान तऽ बड्ड नीक छै मुदा दामे तते रखने छै जे ककरो सऽ बात नहिं पटै छै। ओ मकान फूल-माला सऽ सजाओल देखि जिज्ञासावश अपन गाड़ीक कनेक ब्रेक लगेलनि अकानैक जे के किनलक ई घर। देखलनि वरामदा पर ओ कनियाँ एकटा पुरूख सँगे हँसि-हँसि बतिया कऽ चाह पिबैत। हुनकर पैर एक्सीलेटर पर अनायासे जोर सऽ पड़ि गेल रहनि।

-कुमार मनोज कश्यप, सम्प्रति : निदेशक, भारत सरकार; संपर्क :

सी-11, टावर-4, टाइप-5, किदवई नगर पूर्व (दिल्ली हाट के सामने), नई दिल्ली-110023; # 9810811850; ईमेल: writetokmanoj@gmail.com

अपन मंतव्य *editorial.staff.videha@zohomail.in* ***पर पठाउ।***

१.६.परमानन्द लाल कर्ण-उड़ान



परमानन्द लाल कर्ण

उड़ान

सरस्वती जी भोरे भोर भनसा घर सँ दुई कप चाय बना कऽ हॉल मे आवैत छलीह तहन पति कें आवाज लगावैत छलीह - सुनै छी ? सुनै छी ? चाय बनि गेल अछि । रमेशजी तहन बिछौना पर सँ आँखि मिजैत उठैत छलाह ।फेर दूनु आदमी गप्प-सप्प करैत चाय पिबैत छलथि ।मुदा आई एक कप चाय बना कऽ हॉल मे बैसलथि । सोफाक ऊपर दीवार पर नजरि गेलनि तऽ हृदय विदीर्ण भऽ गेलनि । किछु दिन पूर्व हुनकर पतिदेवक स्वर्गवास भऽ गेल छल । पतिक फोटो देखैत सरस्वती जीक आँखि सँ ढ़व -ढ़व नोर गिरऽ लागल। सरस्वती जी नौकरी करैत छलीह आव ओ सेवानिवृत्त भऽ घर पर रहैत छलीह । पतिक संग भरि दिन बातचीत करैत समय कटैत छल ।ओ सोचैत छलीह जे सेवानिवृत्त भेलाक बाद दूनु बेटाक संग सुखमय जिनगी वितायब ।के जानैत छल जे विधना की लिखने छथिन ? उमरक एहि पड़ाव मे ओ अकेले भऽ गेल छलीह । हुनका जीवन मे खालीपनक दर्द छल।कुर्सी पर बैसल पुरान सव बात एकाएक ध्यान मे आवऽ लाग्लैन । ओ सोचैत छलीह जे एतेक पैघ

घर मे घरक सब कोन हँसी-खुशी सँ भरल छल । दूनु बच्चाक पढ़ाई पर ध्यान दैत छलहुँ । घरक कामक अलावा दूनु बच्चाक सब सुख सुविधाक ख्याल राखैत छलहुँ ।

एक समयक बात अछि जखन दूनु बेटा जेकर नाम अमित आ सुमित छल । रमेश जी चाहैत छलाह जे पैघ बेटा जेकर नाम अमित छल ओ हमर कारोबार संभालैथि मुदा हुनकर दिलचस्पी कारोबार मे नहि छलनि ।ओ विदेश मे नौकरी करऽ चाहैत छलाह ।ओ चाहैत छलाह जे एहन नौकरी करी जाहि सँ भविष्य आ सफल जीवनक गारंटी होय । एक दिन ओ अपना बाबुजी सँ कहलखिन - बाबुजी ! हम कारोबार नहि करब । हमर इच्छा अछि जे हम विदेश मे नौकरी करी । ई सुनि रमेशजी परेशान भऽ गेलाह । ओ कहलनि - बेटा ! अहाँ विदेश जायब तहन ई कारोबार के संभालत ? हम सोचने छलहुँ जे अहाँ पैघ भऽ जायब तहन अहाँ सबहक बाल पर हम अपन कारोबार आगु बढ़ायब । बेटा ! नौकरी तऽ नौकरी होयत अछि , एहि अहाँ किछु हजार कमा सकैत छी । जौं अहाँ व्यापार करब तहन अहाँ लाखो रुपया कमायब । अमित कहलनि - बाबुजी ! अहाँक इएह इच्छा छल तऽ हमरा एतेक नीक सँ नहि पढ़ेबतहुँ । व्यापार तऽ अनपढ़ सेहो कऽ सकैत अछि । नीक पढ़ाई केलहुँ अछि तहन हमर इच्छा अछि जे विदेश जा के कोनो नीक नौकरी करी आ अपन आश-खाप विदेश मे राखी । रमेश बाबु कहलखिन - बेटा ! अहाँ हमर बात समझबाक कोशिश करु । नीक सँ पढ़ाई लिखाई एहि लेल कएल जायत अछि ताकि लोकनि मे समझदारी होय ।कोनो काम पढ़ल लिखल लोकनि जेना नव तकनीक आ तजुर्बा सँ कऽ सकैत अछि ओ अनपढ़ नहि कऽ सकैत अछि ।

कारोबार करनाई अनपढ़क काम नहि अछि आ नहि पढ़ाई लिखाई केवल नौकरीक लेल कएल जायत अछि । भाग- दौड़ करवाक लेल तऽ हमरा लग कतेको कर्मचारी लागल रहैत अछि । हम तऽ अहाँ के हिसाब-किताब सम्भालऽ कहि रहल छी । जौं अहाँक ई कारोबार पसंद नहि अछि तऽ दोसर कारोबार करु ।कारोबार करवाक इच्छा नहि अछि तऽ हमरा एतराज नहि अछि । अहाँ अपना देश मे कोनो नौकरी करु ताकि हम सव अहाँ के देख सकी । रमेश जी आमित के बहुत समझेलखिन मुदा अमित अपना बात पर अड़ल रहलाह । अमितक छोट भाई सुमित ई सुनि कहलनि - भैया ! बाबुजी तऽ नीक कहैत छथिन । जे माय- बाबुजी अपन सर्वस्व हमरा सव पर लूटा देने छथि । अपन पुरा जीवन लगा देने छथिन । अहाँ हुनका बात काटि विदेश जाय चाहैत छी से नीक अहि अछि । ई सुनि अमित अपना छोट भाई सँ कहलनि - अहाँ तऽ सदिखन माँ-बाबुजीक आंगुर पकड़ने रहैत छी । अहाँ एहन लोकनि कखनहुँ कामयाव नहि भऽ सकैत अछि । दुनिया कतऽ सँ कतऽ चलि गेल अछि ,अहाँ ईनारक बेंग बनल रहु । हम अहाँ एहन नहि छी जे मायक कोंचा पकड़ने रही।अमित किनको बात सुनवाक लेल तैयार नहि छलथि । एहन परिस्थिति मे हुनक माय बाबुजी चुप रहनाई ठीक सोचलथि ।अमित पासपोर्टक लेल आवेदन देलखिन । पुलिस सत्यापन भेलाक उपरांत हुनकर पासपोर्ट आवि गेलनि । पासपोर्ट मिललाक बाद अमेरिकाक लेल वीजा बना कऽ अमेरिका चलि गेलाह । अमित के अमेरिका चलि गेला पर सरस्वतीजी बड्ड दुःखित भेलीह । रमेश जी हुनका कहलखिन जे अहाँ एहि बातक चिंता नहि करु ।आई-काल्हि धीया-पुता अपना हिसाब सँ जीअ चाहैत अछि । एहि पर सरस्वती जी कहलनि - हमसव बच्चाक लेल जी जान

लगा देने छलहुँ , अपन जिनगीक हर पल हुनका पर बीतेलहुँ । जाहिया सँ एकर जन्म भेल हम अपन सब शौख -मनोरथ ताख पर राखि बच्चाक भविष्यक लेल सोचलहुँ मुदा आब बच्चा अपन मनचाही जिनगीक अलावा किछु नहि सोचैत अछि । ई कहि सरस्वती जीक आँखि मे नोर ढ़ब -ढ़बा गेलनि । रमेश जी कहलनि - अहाँ चिंता नहि करु ।अमित जेना जीबऽ चाहैत अछि तेना जीबऽ दिअऊ ।

अमित के विदेश गेलाक उपरांत हुनक छोट भाई सुमित हुनका लग रहैत छलाह । सरस्वती जीक भरोसा सुमित पर छल । सुमितक स्वभाव अमित सँ उल्टा छल । ओ शर्मिला आ माय- बाबुजीक आज्ञाकारी बालक सेहो छलाह । माय-बाबुजी जे कहैत छलखिन सएह करैत छलाह । रमेश जी के आब हुनका पर उम्मीद छलैन । ओ सोचैत छलाह जे बड़का बेटा जकाँ ई स्वार्थी नहि छथि । सुमित सदिखन कहैत छलाह जे दुनियाक कतबो सुख हमरा दऽ देल जाय तैयो हम माय- बाबुजी के नहि छोड़ब । स्कूली पढ़ाई समाप्त भेला पर हुनकर नामांकन कॉलेज मे भेल । कॉलेज जखन लीजर घंटी छल तखन ओ कॉमन रूम मे आबि अकेले बैसल रहैत छलाह । स्वभाववश ओ केकरो सँ बेसी बात नहि करैत छलाह । एक दिनक बात अछि , कॉमन रूम मे सुमित असगरे बैसल पत्रिका पढ़ैत छलाह । हुनकर क्लासक एकटा संगी हुनका लग आबि के बैसलखिन जिनकर नाम सुलेखा छल । सुलेखा अमित सँ कहलखिन - अहाँ चुपचाप एक कात मे किएक बैसल छी । चलु केंटिन मे दूनु आदमी चाय पीयब । पहिले तऽ एहि बात के स्वीकार नहि केलखिन मुदा सुलेखाक जिद्दक आगु हुनकर किछु नहि चलल

। ओ नहि चाहैत सुलेखा संग कैंटिन चलि गेलाह । आब सब दिन दूनु लोकनि कैंटिन में आबि घंटो गप्प-सप्प करैत छलैथि ।कहियो एहन भऽ जायत छल जे घंटी सेहो छुटि जानि । धीरे-धीरे ओ सुमितक स्वभाव सँ परिचित भऽ गेलीह । सुलेखा एहन लड़काक तलाश मे छलीह जेकरा अपन कोनो सोच नहि होय । लड़का के हम जेना नचावी तेना ओ करथि आ अपना मनमर्जीक अनुरूप ढ़ालि सकी । सुलेखा देखवा मे ततेक सुन्नर छलीह जे कॉलेजक लड़का हुनका पर फिदा छल । एहि परिस्थिति मे सुमित सोचैत छलाह जे सुलेखा जौं हमरा सँ विआहक लेल तैयार भऽ जाय तऽ नीक रहत । मुदा सुमित अपन इच्छा हुनका सँ व्यक्त नहि केलखिन । जाहि दिन सुमित सुलेखा के नहि देखैत छलाह ताहि दिन ओ परेशान भऽ जायत छलाह ।तहिना जाहि दिन सुमित नहि आवैत छलखिन ताहि दिन सुलेखा सेहो परेशान भऽ जायत छलीह । आब एक दोसरक बिना समय काटऽ मुश्किल लागैत छलनि । एक दिनक बात अछि सुलेखा आ सुमित दूनु लोकनि कैंटिन मे चाय पी रहल छलथि तहन सुलेखा सुमित सँ कहलखिन - अहाँक बाबुजी सँ हमर बाबुजी मिलऽ चाहैत छथि से अहाँ अपना बाबुजी सँ वतायब । सुमित कहलनि - अहाँक बाबुजी किए मिलऽ चाहैत छथिन ? सुलेखा कहलनि - हम एक दोसरा कें जानवे करैत छी । जौं दूनु गोटेक विआह भऽ जायत तऽ नीक रहत तें हम अहाँक बारे मे हम अपन बाबुजी सँ बात केलहुँ अछि । राति मे बाबुजी सँ कहलहुँ जे हम आ सुमित विआह करऽ चाहैत छी । हमर बाबुजी तऽ सहमत भऽ गेलाह मुदा अहाँ अपन बाबुजी सँ बात करतहुँ तऽ नीक रहत ।सुमित कलहनि - हम कोना कही, हमर विआह कोन ठाम होयत से माय-बाबुजी जानथिन हम अखन धरि एहि सम्बन्ध

मे हुनका सँ बात नहि केलहुँ अछि ।हम सोचैत छी जे हम अपन विआहक बात हुनका सँ कोना कहु । सुलेखा कहलनि - ठीक अछि, अहाँ बात नहि करु हमर बाबुजी अहाँक बाबुजी सँ मिल लेताह ।अहाँ अपन घरक पता लिखा दिअ । हम अपना बाबुजी सँ बात कऽ लेव । सुलेखा घर पर आवि अपना बाबुजी सँ कहलखिन । सुलेखाक बाबुजी कहलनि जे हम रमेश बाबू सँ मिलैत छी तहन किछु कहव, जौं ओ एहि रिश्ताक लेल तैयार भऽ जेताह तहन हमहुँ तैयार भऽ जायव । सुलेखाक बाबुजी रमेशजीक घर आवि एहि रिश्ताक लेल कहलखिन । रमेश बाबू के एहि सम्बन्ध मे कोनो जानकारी नहि छलनि । रमेश बाबू कहलखिन जे दूनु एक दोसर सँ विआह करऽ चाहैत छथि । दूनु एकहि क्लास मे पढ़ैत छथि । हमरा सवहक जिम्मेवारी अछि जे दुनु के विआहक बन्धन मे बाँधि दी । रमेश बाबू कहलखिन जे हमरा कोनो एतराज नहि अछि मुदा दूनुक पढ़ाई भऽ जायत तहन ठीक रहत । सुमितक पढ़ाई भेलाक उपरान्त विआहक दिन निश्चय भेल । रमेश अपन पैंघ बालक अमित के एहि सम्बन्ध मे कहलखिन मुदा अमित एकर कोनो प्रकारक उत्तर नहि देलखिन । रमेश जी जखन एहि अवसर पर सम्मिलित होयवाक लेल कहलखिन तहन ओ साफ मना करैत कहलनि - बाबुजी ! हमरा अखन छुट्टी नहि मिलत तें हम नहि आवि सकव । सुमित आ सुलेखाक विआह धूमधाम सँ कराओल गेल । सुलेखा सुमितक घर आवि गेलीह । सुलेखा एक अमीर घरक लड़की छलीह । हुनकर बाबुजीक कारोबार देश-विदेश मे फैलल छल । दोसर दिस सुमितक बाबुजी के सेहो एहि ठाम कारोबार छल ।सुमित अपना बाबुजीक कारोबार मे साथ दिअ लगलाह । सवेरे नाश्ता कऽ सुमित दुकान पर चलि जायत छलाह । दुपहरिया मे जखन रमेश जी

आवैत छलाह तहन सुमित भोजन करवाक लेल आबैत छलाह । सुमित के देखि रमेश आ सरस्वती जी दूनु खुश छलथि । ओ सोचैत छलाह जे अमित चलि गेला पर कम सँ कम एकटा बेटा तऽ साथ मे अछि मुदा घर पर सुलेखा के मन नहि लागैन । सुलेखाक इच्छा होयत छलैन जे हम अपना बाबुजीक विदेश वाला कारोबार सम्भाली ।

एक दिनक बात अछि सुलेखा सुमित सँ कहलखिन - हमर बाबुजी चाहैत छथि जे हम सव हुनकर अमेरिकावाला कारोबार सम्भाली । किएक तऽ ओहि ठाम एक योग्य आदमीक आवश्यकता अछि । अहाँ अहु ठाम कारोबार करैत छी आ अमेरिका मे सेहो इएह काम करव । सुमित कहलखिन जे एहि ठामक कारोबार के सम्भालत ? हम एहि ठाम छी तहन बाबुजी के आराम मिलैत छैन । हम आ बाबुजी रहव तहन ई कारोबार आओर आगु बढ़त । ई बात सुनि सुलेखा तमतमा गेलीह आ कहलनि जे हम अमेरिका अवश्य जायव । एहि ठाम हमरा मन नहि लागैत अछि । अहाँ अपना माय-बाबुजी के कहि अमेरिका चलु । अच्छा किछु दिन रुकि जाऊ तहन हम हुनका कहैत छी । सुमित सोचलैथि जे अखन सुलेखा नव स्थान पर एलीह अछि तें मन नहि लागैत छैन । किछु दिन मे सव किछु ठीक भऽ जायत । किछु दिनक बाद सुलेखा फेर सुमित सँ कहलखिन जे आई बाबुजीक फोन आयल छल । ओ कहैत छलखिन जे अहाँ सव अमेरिका चलि जाऊ ताकि ओहि ठामक कारोबार ठीक ढंग सँ चलि सके । एहि पर सुमित कोनो उत्तर नहि देलखिन । साँझ मे जखन सुमित दुकान बंद कऽ घर पर एलाह तहन सुलेखा कहलखिन जे अहाँ माँ-बाबुजी सँ जौं नहि कहव तहन हम हुनका

सँ कहैत छी । सुलेखाक जिद्द करला पर सुमित अपना माय-बाबुजी के कहलखिन जे सुलेखा अमेरिका जायवाक लेल जिद्द कऽ छथि । की कएल जाय से समझ मे नहि आवि रहल अछि । रमेशबाबू कहलखिन जाऊ दूनु आदमी अमेरिका सँ घुमि आवु । कनियाक मन पूरा भऽ जेतनि । एहि पर सुमित कहलखिन - नहि बाबुजी ! ओ कहैत छथिन जे सुलेखाक बाबुजीक कारोबार जे अमेरिका मे चलैत छैन तकरा हम जा के सम्भाली । ई सुनि रमेश बाबुजी आश्चर्य मे पड़ि गेलाह । ओ सोचैत छलाह जे सुमित आव हमरा लग रहत मुदा हुनकर ई सोचनाई गलत साबित भऽ रहल अछि । सरस्वती जी कहलखिन - बौआ ! हम सब कोना रहव । एहि ठाम रहव से नीक नहि अछि की ? सुमित कहलनि - हाँ माँ ! अहु ठाम कोनो दिक्कत नहि अछि मुदा सुलेखा ई बात मनवाक लेल तैयार नहि छथिन। सुमित माय-बाबुजी सँ ई बात करैत छलाह कि गामक डाकिया पासपोर्ट देवाक लेल आवि गेल । सुमित दूनु पासपोर्ट डाकिया सँ लऽ लेलनि । किछु दिन मे दूनुक अमेरिकाक वीजा सेहो आवि गेल । सुमित आ सुलेखा दूनु अमेरिका चलि गेलाह ।

सुमित के अमेरिका चलि गेला पर रमेशबाबू के गहरा सदमा लागलनि । एहि शोक सँ हुनकर स्वास्थय सेहो खराब रहऽ लागलनि । स्वास्थय खराब भेलाक कारण आब ओ दुकान सेहो नहि जायत छलाह । धीरे-धीरे कारोबार बंद भऽ गेल सरस्वतीजी दुकान बेचि के रमेश बाबू मे लगा देलखिन । अंततः रमेश बाबू एहि दुनिया मे नहि रहलाह । रमेशजीक मरलाक बाद सरस्वती जी टुटि गेलीह । दूनु बेटा पहिले घर छोड़ि विदेश चलि गेल छलाह आव पति सेहो संग छोड़ि देलखिन । घरक दिवार हुनका काटऽ

दौड़ैत छलनि । इएह सोचैत सोचैत आँखि सँ नोर गिरऽ लागलनि । टेबुल पर राखल चाय ठंढा भऽ गेलनि । भोर सँ बैसल -बैसल दिनक चारि बजि गेल । सरस्वतीजी पतिक देहान्त आ बच्चाक कुआथ सँ चिंतित छलीह । तखनहि ओ घंटीक आवाज सुनलखिन । घंटिक आवाज सुनि ओ घरक किवाड़ खोललखिन तहन देखैत छथिन जे बचपनक संगी जेकर नाम सुषमा छल से ठाढ़ छथि । सुषमा सरस्वती जीक चेहरा देखैत बड्ड दुःखित भेलीह । ओ कहलनि - अहाँ अपन वेश-भूषा एहन किएक बनेने छी । ईश्वरक इच्छाक आगु अपन अपन कोनो वश नहि चलैत अछि । देखु हमर घरवाला पंद्रह बरीख पहिले एहि संसार मे हमरा अकेले छोड़ि चलि गेलाह । तहन अपन रास्ता खोजि जीवन यापन कऽ रहल छी । हुनका गुजरलाक बाद हम सोचलहुँ जे हमर जीवन कोना चलत आ हमरा समय कोना कटत ? ताहि लेल हम ट्यूशन कऽ रहल छी । घरक काम कऽ हम ट्यूशन मे लगि जायत छी । एहि सँ एक दिस हमर समय नीक सँ कटि जायत अछि तऽ दोसर दिस आमदनी सेहो होयत अछि । तें अहाँ अखन हिम्मत सँ काम लिअ । एहि ठाम अहाँक नाम नीक शिक्षिका मे छल । अहाँ तऽ हमरा सँ नीक पढ़ा सकैत छी । एहि सँ समय सेहो कटि जायत आ आमदनी सेहो होयत । गप्प-सप्प कऽ सुषमा चलि गेलीह । हुनका चलि गेलाक बाद सरस्वती जी सोचलीह जे सुषमाक कहनाई ठीक अछि । हमहुँ कोनो काम में लगि जायब तहन एहि शोक सँ उबरि सकैत छी । ई शोचि ओ अपना घर पर एक स्कूल खोललथि । जाहि मे प्राइमरी धरिक बच्चा पढ़ैत छल । पढ़ाई देखि मोहल्लाक सब बच्चा हुनका स्कूल मे आवऽ लागलनि । ओ सुषमाजी के सेहो कहलनि जे अहाँ हमर एहि काम मे साथ देब तहन नीक रहत । सुषमा जी सेहो

हुनका संग स्कूल मे पढ़ावऽ लागलखिन । धीरे -धीरे स्कूलक ख्याति कतेको गाम मे फैल गेल। सरकार सँ मान्यता सेहो मिल गेलनि ।

सुमित के अमेरिका गेला पर ओहि ठाम ससुरक काम सम्भालऽ लगलाह । दूनु प्राणी खुशहाल जीवन व्यतीत करैत छलाह मुदा किछु बरख बाद ससुरक देहांत भऽ गेलनि । तकर बाद सुषमाक भाई सव मे बटवारा भऽ गेल । बटवारा भेलाक कारण अमेरिकाक कारोबार मे कमी भऽ गेल, जाहि सँ आमदनी सेहो कम भऽ गेलनि। दोसर दिस सुषमाक भौजाई सेहो सदि खन ताना मारैत छलखिन जे अहाँ अपन घर छोड़ि हमरा सवहक घर पर रहैत छी । अहाँ अपना सासुर किएक नहि जायत छी ? ओहि ठाम सेहो ससुरक नीक कारोबार अछि । सव दिनक कीच-कीच सँ सुमित परेशान भऽ सुषमा सँ कहलखिन किएक नहि हम सव गाम चलि जाय । एहि पर सुषमा जी कहलखिन जे गामक जमीन आ घर बेच लिअ आ एहि ठाम अपन कारोबार करु , हम गाम नहि जायव । ई सुनि सुमित अपन पैंघ भाय अमित के फोन केलखिन । सुमितक फोन सुनि ओ बड्ड खुशी भेलाह । हाल समाचार जनलाक बाद सुमित कहलखिन जे भैया हमर स्थिति अखन ठीक अछि । हमर ससुरक कारोबार मे सार सव दखल दऽ देलखिन जाहि सँ कारोबार ठीक सँ नहि चलैत अछि । हमर इच्छा होयत अछि जे गाम परक जमीन आ घर बेच देतहुँ तऽ किछु पाई भऽ जायत तहन कारोबार नीक सँ चलि सकत । एहि पर अमित कहलखिन जे अखन हमरहु काम छुटि गेल अछि । हमहुँ सोचि रहल छी जे की करी ? जौं अहाँक इच्छा अछि तहन गाम चलु । ई सोचि दुनु भाय अमेरिका सँ गाम

एलाह तऽ घरक नक्शा बदलल छल । एहि ठाम एकटा पैघ स्कूल खुलल छल । दुनु भाई टेम्पू सँ उतरलाह तऽ माय के गोर लागलखिन ।कोना एलहुँ अछि ? कोनो विशेष काम छल की? सरस्वती जी टहलूक के कहलखिन जे हिनका सबके घर लऽ जाऊ आ भोजन कराऊ । हम स्कूल सँ आबैत छी तहन गप्प -सप्प होयत । स्कूल बन्द भेलाक बाद ओ घर पर एलीह तहन सब आदमी एक ठाम बैसलथि । गप्प-सप्पक दौरान अमित कहलखिन माँ हमर सबहक स्थिति नीक नहि अछि । हम अँहि सँ भेंट करऽ एलहुँ अछि। सरस्वती जी कहलखिन की भेल ? अमित कलहखिन जे अमेरिका मे अखन मंदी चलि रहल अछि , हमरा जे नौकरी छल ओ छूटि गेल अछि । कोनाहु समय काटि रहल छी । एहि पर सरस्वती जी कहलखिन अहाँ सब जे ई सोचि कऽ एलहुँ अछि जे एहि ठामक जमीन आ घर बेचब से सम्भव नहि अछि । हम जानैत छी जे अहाँक बाबुजी मरलथि तखन तऽ अहाँ सब के छुटि नहि छल जे बापक मुखाग्नि दी । जखन अहाँक अमेरिका मे दिक्कत भेल तहन अहाँ सबके गाम मन परल । अहाँ सब जे रास्ता चुनलहुँ अछि ओ नीक अछि । एहि ठामक सब जमीन हम बेच कऽ एहि स्कूल मे लगा देलहुँ अछि आ एहि स्कूल के ट्रस्टक नाम कऽ देने छी । एहि ठामसँ अहाँ सबके कोनो सहायता नहि मिलत । ई सुनि दुनु भाय चुप भऽ गेलाह । भिनसरे दुनु भाय माय के गोर लागि फेर अमेरिका चलि गेलाह ।

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**

१.६.संतोष कुमार राय 'बटोही'-समीक्षा- पोथी : गामक सुख (कविता-संग्रह)



संतोष कुमार राय 'बटोही'

समीक्षा- पोथी : गामक सुख (कविता-संग्रह)

पोथी : गामक सुख (कविता-संग्रह)
कवि : राम विलास साहु
प्रकाशन : पल्लवी प्रकाशन, निर्मली (सुपौल)

कवि राम विलास साहु जी केर ई चारिम प्रकाशित पोथी छियैन्ह । हम संपूर्ण पोथीक समीक्षा नहि कऽ रहल छी , परञ्च अइ पोथीक कविताक रसास्वादन केलाक पछैत लागल मे अइ पोथीक लेल किछु लिखल जेवाक चाही । ई पोथी कवि हमरा 'सगर राति दीप जरय' कथा गोष्ठी मे सहुरिया- नवटोली गाम मे भेंट स्वरूप देने रहैत । इस्कूलक पठन-पाठन आओर घरक जिम्मेदारीक धियान राखैत पोथी के नहि पढ़ि सकलहुँ, परञ्च फुरसत मिलला पर अइ पोथी कैं पढ़लहुँ अछि ।

'गामक सुख' कविता-संग्रह कँ पहिल कविता अछि - 'मनक मोलि' । कवि मोनक मोलि धोवाक परयास करैत छथि । एकटा आम मानस मे ई प्रचलित अछि जे गंगा (नदी) आओर कुण्ड मे नहेला सँ पाप धुलि जाएत छै । तीर्थाटन केला सँ पुण्य होएत छै । तन रंगेला सँ यानी तिलक-चानन कएला सँ मोन संमार्ग पर चलअ लगैत छै । मोन भक्ति रस मे डुबेला सँ देहक खरकटल मोलि धुलि जाएत छै। परञ्च कवि लिखैत छथि -

" तीर्थक पुण्य बहुत कमेलौं
नदी, कुण्डमे स्नानो भेल
तन रंगेलौं मन रमेलौं
तैयो ने छुटल मनक मोलि ।"

कवि साहु जी केर ई पाँति पढ़ि कऽ कबीर साहबक पाँति याद आबि रहल अछि -

" माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर,
कर का नमका डार दे, मन का मनका फेर ।"

कवि साहु जी आओर कबीर साहब मे भावसाम्य देखा रहल अछि । कवि कबीर साहब सँ आओर संसारक अनुभव सँ प्रेरित भऽ लिखलाह अछि जे साहित्यिक गतिविधि सँ जुड़लाक बाद आओर विद्वानक सत्संगति केलाक बाद तन-मन निर्मल भऽ गेल -

" बिनु जप-तप केनहि हमरा
तन-मन निर्मल भऽ गेल
तखने छुटि गेल मनक मोलि ।"

ओना तँ अइ कलियुग मे मोनक मोलि छुटनै बड़ गप्प छियैय, परञ्च कवि साहुजी अइ संसार कैँ मोलि छोड़वाक लेल प्रेरित करवाक परयास करैत छथि ।

कवि राम विलास साहु जीक ई कविता 'केकरा लेल बनल' केर शीर्षक ' ई देश केकरा लेल बनल' रहला सँ नीक लगतै । 1947 सँ पहिने देश गुलाम छल । गुलामी की होएत छै से ओई समयक लोकनि भोगने हेताह । परञ्च पन्द्रह अगस्त, 1947 कैँ देश आजाद भेलाक अनेक साल बितलाक बादो देश मे समस्या सभ किछु पहिने जकाँ छेबे करै । देश मे योजना केर की हाल छै से कवि साहुजी लिखैत छथि -

" गरीबक नाओंपर योजना बनल
शिक्षा स्वास्थमे घुन लगल
माटि-पानि दवाइमे जहर घोरल
धरासँ अम्बर धरि इंसान बदलल
ई देश केकरा लेल बनल ।"

देश मे लूट, हत्या, अपहरण बढ़ि गेल छै। धरम केर नाओं पर देश कैँ बँटवाक परयास भ रहल छै । नेता आओर अधिकारी सभ मालामाल भऽ रहल छथि।

किसान अपन खेत छोड़ि परदेश खटि रहल छथि । देश सभ बेवस्था चरमरा गेल छै । कवि लिखैत छथि -

" महगी घुसखोरी सँ चैन उड़ल

भेदभावक बीच जिनगी मरल

लूट हत्या अपहरण होइत रहल

ई देश केकरा लेल बनल ।"

कवि राम विलास साहुजी धर्मक पाखण्डी सभ पर अपन कविता 'धर्मक उपदेश की भेल' मे चोट करैत लिखैत छथि -

"सूर तुलसी कबीर मीराकेँ बिसैर गेल

नीति उपदेश वेद पुराण शास्त्र

जेना कलियुगमे तर पड़ि गेल-ए

जेतए इंसानक कातिल इंसाने होइए

तेतए धर्मक उपदेश की भेल-ए ।

कलियुग मे धर्मी सभ विधर्मी भऽ चुकल अछि । नारी संग बेभचार कऽ रहल अछि। गुरमित सिंह रामरहिम, रामपाल, आशाराम वगैरह धार्मिक गुरु जनीजाति संग बेभचार कऽ रहल अछि। एहेन वेक्ति उपदेश देनिहार बनल अछि। कवि साहुजी लिखैत छथि -

"रावण रामपाल, गुरमित सिंह राम रहिम

नारी संग अत्याचारक रास नचैए

चारू युगमे कलियुग भारी पड़ल-ए
धर्मक आड़िक पाछू इंसानो शैतान
जेतए इंसानक कातिल इंसाने होइए
तेतए धर्मक उपदेश की भेल-ए ।"

समय तेतेक खराब भऽ चुकल छै जे धर्मक चोला पहिर कऽ किछु बाबाजी साधुक खाल मे शैतान बनि गेल घुमि रहल छथि । ओही बाबाजीक लेल कवि साहुजी लिखैत छथि -

"सज्जन, संत, महंथ, तपसी बनि कऽ
वन पर्वतमे नुकाएल फिरैए
□ □ □ □ □ □ □
जेतए इंसानक कातिल इंसाने होइए
तेतए धर्मक उपदेश की भेल-ए ।"

समय तऽ एहेन आबि गेल छै जे ककरो कियो नहि चिन्हैत छै । समाज आओर परिवार टुटि रहल छै । मनुक्ख मनुक्ख नहि रहि गेल छै । जिनगी कैँ आपाधापी मे लोक माय-बाप कैँ भुलि रहल छथि। कवि चिंचित छथि आओर लिखैत छथि -

" माए-बाप हक्कन कनैए
अछैते औरुदे घरमे मरैए
पुत्र-कुपुत्र बनि ऐंठैए
एक-दोसर कैँ देख जरैए ।"

कवि राम विलास साहुजी कैँ जिनगी केर ढेर रास अनुभव छन्हि । अइ कविता-संग्रहक सभ कविता कविजीक वृहद अनुभव सँ सिक्त छन्हि । परञ्च विराम चिह्न केर प्रयोग कम केने छथि जाहि कारणे पढ़वाक गति मे वा सस्वर वाचन मे किछु बेवधान होएत छै ।

अइ संग्रह मे विरही नायिकाक चित्रण सेहो हिया कैँ छु दैत छै आओर पूरा देह के झकझोरि दैत छै । कवि अपन कविता ' जीबिते जी मरै छी' मे विरही नायिकाक मुँह सँ कहावैत छथि -

"केकरा देख जीअब
दुनियाँ अन्हार लगैए
की कहू सखी
कहल नहि जाइए
जुआनी जरबै छी
जीबिते जी मरै छी ।"

'छिड़िया गेल गाम-समाज' मे गामक यथार्थ स्थितिक मार्मिक चित्रण करैत छथि । बिहार सँ पलायन भऽ रहल छै ताही दुआरे गाम तहस-नहस भऽ रहल छै । कवि साहुजी लिखैत छथि -

"गामक भैयारी-दियादी सभ टुटल
चिन्ह-परचित सेहो उठि गेल
परिवार छुटल समाजो टुटल
पलायनसँ सभ किछु छिड़ियाएल "

'गामक सुख' कविता-संग्रह मे कवि अपन जिनगी केर सभ अनुभव कैँ लिख देने छथि ।

समीक्षक : संतोष कुमार राय 'बटोही'

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**

१.७.ग्रुप कॅप्टन (डॉ) वी एन झा-श्राद्ध कर्म के लौकिक व अलौकिक महत्त्व



ग्रुप कॅप्टन (डॉ) वी एन झा

श्राद्ध कर्म के लौकिक व अलौकिक महत्त्व

(एहि लेख में आत्मा के परमात्मा में विलय के सम्बन्ध में श्राद्ध कर्म के वैज्ञानिक दृष्टिकोण छै। लेखक आधुनिक विज्ञानक नजरिए सँ आत्मा के परमात्मामें लीन होयबाक परिकल्पना करैछ, जे निश्चय ही अपूर्ण ओ साक्ष्य-रहित अछि आ केवल अनुमान मात्र अछि । सामान्य व्यक्ति के बुझबा लेल श्राद्ध-कर्मक अवधारणा के व्यक्त करबाक ई एक प्रयास मात्र अछि। लेखक कैँ परम हर्ष हेतन्हि जौं कियो आध्यात्मिक शास्त्र-विशेषाज्ञ कोनों तरह केर शास्त्र-आधारित विवेचन वा आलोचना प्रस्तुत करतन्हि)

शरीर, मृत्यु, आत्मा आओर परमात्मा

अपन पूर्वज क नाम पर हुनकर आत्माक शान्ति आ कल्याण लेल श्रद्धापूर्वक कएल गेल कर्महि श्राद्ध छै। यद्यपि मानल जाइत अछि जे हर जीवात्मा परमात्माक एक अंश मात्र अछि, तँ परमात्माक

ओहि अंश-मात्र आत्मा लेल, जे स्वतः में निर्विकार अछि, एहि श्राद्ध कर्मक की आवश्यकता अछि? संभवतः ई उत्तर आत्मा, प्रेतात्मा, पुनर्जीवन आदि जेकाँ अवस्थाक गूढ़ रहस्य मे अछि (पढ़ू "परमात्मा का वास", https://thecounterviews.com/article/almighty-god-his-location) ।

सनातन वा हिन्दू धर्म में ई धारणा सदिखन रहल अछि जे आत्मा अविनाशी अछि आ किछु जीव में, जकर जन्म भेल होवै, कखनो छोट कालखंड तके रहैत अछि आ ततपश्चात वा तँ देह के रूप बदैल लैत अछि वा फेर परमात्मा में लीन होयबाक कारण एहि मृत्युलोक सँ बाहर निकलि जायत अछि। हर जीवात्माक जीवन-काल कईटा अन्य घटक पर सेहो निर्भर करैत अछि। मानल जाइत अछि जे ककरो मृत्यु ओकर आयु सीमा सँ पहिने वा बाद मे नहि होयत, मुदा ओहि ग्रंथ सभ में अकाल मृत्यु के बर्णन सेहो अछि। ताहि सँ ई बुझायल जाइत अछि जे मृत्यु निश्चित समय सँ पहिनें वा बाद में सेहो भ सकैत अछि आ एहि कारणे जीव अपन आत्म-रक्षा लेल अपन-अपन विवेक सँ दीर्घायु होवै के प्रयास अवष्य करैत अछि। अर्थात्, डाक्टर, वैद्य के चिकित्सा या गुरुजन के आशीर्वाद के प्रभाव सँ आयु छोट या बड़ भ सकैत अछि।

जीवात्मा पर कर्म केर प्रभाव

प्रत्येक जीवात्मा जीवन भरि अपन-अपन कर्म करैत अछि । हुनकर ओ सुकर्म वा कुकर्म में आत्मा सेहो सहायक होतैक । तँ सुकर्म के सुफल व कुकर्म के कुफल में हुनक आत्मा सेहो साझीदार रहतन्हि । एकर मतलब ईहो भ सकैत अछि कि संपर्क केर प्रभाव आत्मा पर सेहो पड़ैत अछि आ एहि लेल विकृत देह में आत्मा सेहो विकृत होएत अछि, जइना कोनो सुगंधित जंगल या बगिचा सँ आबै वाली

हवा सुगंधित रहैत अछि आ कोनो दुर्गंध स्थान सँ आबै वाली हवा में दुर्गंध होइत अछि। ई तँ अकाट्य सत्य अछि कि जीवात्मा सँ गलती या पापकर्म अवश्य होइत छै आर ओहो कलियुग में । एहि लेल आजुक युग में लगभग हर व्यक्ति व हुनक आत्मा के दोषी होयबाक बहुत संभावना छै। तँ परोक्ष रूप सँ इहो कही सकैत छी जे सम्प्रति अधिकतर आत्मा दूषित आ कलुषित अछि । चूँकि हर प्राणी के आत्मा कमोवेश दूषित छै, तें तेहेन कलुषित आत्मा में भगवान् या परमेश्वर केर वास नहि भ सकैछ । तँ ई मानि कँ चलू जे परमात्मा के प्रतीक मानल जाए वाला आत्मा जौं दूषित भ गेल तँ देहावसान पश्चात जौं श्राद्ध कर्म नहि भेल छै तँ ओ आत्मा जीवलोक में भटकि रहल होयत, भले ओ प्रेत योनि हो या अन्य जीव के पुनर्जन्म के रूप में । मनुष्य एक एहेन योनि अछि जाहि में बुद्धि आ विवेक सँ निर्णय लेबाक क्षमता छै। तें यदि मनुष्य योनि में लोकनि सत्कर्म नहि केलन्हि तँ ओकर उद्धार नहि हेतन्हि । तखन संभावना छै कि ओकरा फेर स पुनः जीवन चक्र में जाए पड़त, चाहे ओ चाहे सीमित जन्म हो या सहस्त्रों जन्म केर पुनरावृत्ति।

अंग्रेजी में एक कहावत अछि To err is human। आजुक समय में या कलियुग में कहू, लौकिक विलासिता बढ़ि रहल अछि आ ओकरा पूरा करए लेल लोक अनैतिक कर्म करै सँ परहेज नहि राखै छथि । किछु लोकनि तँ हत्या करए लेल सुपारी लेवै के व्यवसाय अपनाए लेने छथि। असत्य बाजब आजुक समय में एक कला बनि गेल अछि, जकरा अंगरेजी में अक्सर 'डिप्लोमेसी' सेहो कहल जाएत अछि। माता-पिता आ सम्मानित लोकक अपमान कलियुग में आम बात बनि गेल अछि। मानवीय शोषण, बलात्कार, छोट-छोट बात

पर प्रताड़ना आ हत्या आब सामान्य बात भऽ रहल अछि। संक्षेप में कहू तऽ आजुक युग में विरलहि कियो अहिना व्यक्ति होएत जे दिनानुदिन पापकर्मक भागीदार न हेताह।

आत्माक अलौकिक यात्रा आ प्रवाह

कोनहुँ जीव में आत्मा अन्यान्य गुणात्मक कला कें ग्रहण कएने एहन जल धारा के जेकाँ प्रवाह करइ छथि, जे आगाँ बढ़ैत एक सँ दोसर बड़ नदी में क्रमशः समाहित हएत अंततः अथाह समुद्र में मिल जाइक छथि। संभव अछि जे जल-बूँद रूपी कओनो जीवात्मा कैँ कोनों प्रवाहित जलश्रोत के भेटय तक के यात्रा में जे भटकनाई होइछ, ओ शायद प्रेत योनि में भटकाए के सामान होइछ । जखन ओहि जलबूँद कोनों शुद्ध जलश्रोत सऽ मिलैत निरंतर आगाँ बढ़ैत रहैत अछि, तँ ओ शायद स्वर्गक प्रतीक होइछ आ अशुद्ध जलश्रोत में मिलि कैँ नरक। मुदा आत्माक जल श्रोत रूपी निरंतर प्रवाह शायद जीवात्मा के अन्यान्य अवस्थाक पूरा वर्णन नहि कऽ सकैत अछि। यैह ठाम श्राद्ध कर्मकें बहुत महत्त्व होइछ, जइ सँ ओहि बूँद रूपी आत्माकें प्रेत-योनि में या पुनर्जन्म में भटकन सँ बचएबाक लेल श्राद्ध मन्त्र शुद्ध जल रूपी मार्ग प्रशस्त करैत अछि, आ हुनका स्वर्गलोक या मोक्षक रास्ता खोलि दैत अछि। ओहिनाहिं किछु तीर्थ स्थल के सेहो बहुत महत्त्व होइछ, जकरा बारे में मानल जाइछ जे ओहिठाम मृत्यु होवै पश्चात अमुक आत्मा किछु शुद्ध या अशुद्ध जलश्रोत रूपी प्रवाह में समा कऽ क्रमशः स्वर्ग या नरक में जाइत होइछ वा सीधा समुद्र रूपी परमात्मामें लीन भऽ कऽ मोक्ष प्राप्त करैत अछि जेकर उदाहरण काशी में प्राणत्याग या गया में पिंड दान अछि । एहि सँ हुनका प्रेत योनि वा पुनर्जीवन के चक्र सँ मुक्ति भेटबाक पथ भेट जाइछ ।

शास्त्रानुसार प्रत्येक जन्म लेनिहार प्राणी या जीवात्मा क मृत्यु, जे अल्प वा दीर्घ आयु में होवै, से निश्चित अछि। हमर ग्रंथक अनुसार अमर वा चिरंजीवी मानल गेल मात्र सात पुरुष छलाह, जाहि में हनुमान, अश्वत्थामा, परशुराम, विभीषण, महर्षि वेदव्यास, कृपाचार्य आ राजा महाबली शामिल छथि । अमरत्व नाम वा कर्म कैँ भेट सकैत अछि, देह कैँ नहि। शरीर त पंचतत्व सं बनल अछि, कभू न कभू ताहि में विलीन होवै अवश्यम्भावी अछि आ ओकर यात्रा एतहिं मृत्युलोक में समाप्त होइत अछि; मुदा एतहिं सं शरीर सँ विमुक्त आत्मा के परमात्मा सँ मिलै के यात्रा शुरू होइत अछि।

देहावसान यदि तीर्थ स्थान मे होवै जताए सँ मानल जाइत अछि जे आत्मा वा जीवात्मा के स्वर्गक मार्ग प्रशस्त होइत अछि, तऽ आत्मा के यात्रा सहज भ जाइत अछि जेकर उदाहरण काशी में देहावसान या गया में पिंड दान अछि । मुदा यदि देहावसान कोनों दोसर ठाम भेल तऽ जल-बूँद रूपी ओ आत्मा कैँ श्राद्ध कर्म सँ जलधारा रूपी ओ प्रवाह दिस प्रेरित करब अनिवार्य भऽ जाइत अछि, जाहि सँ ओ आत्माक यात्रा सागररूपी परमात्माक दिस बढ़ी जाएत अछि । तद्यपि ओ जलप्रवाह के यात्रा में अवरोध वा अड़चन आबि सकैत अछि, जइमे किछु जल उपयोग में आबि सकैत अच्छी जेना किनको प्यास बुझेबाक, फसलक सिंचाई या आन किछु कार्य करबाक आदि भ सकैत अछि ।

एकटा आओर बात ध्यान में रखब जरूरी अछि जे आत्मा आ जलविंदु केर बीच हर मायने में समानता होवए से जरूरी नहि। ई दुनू बिलकुल अलग-अलग अवयव छथि, जाहि के हम मात्र आत्मा कैँ बुझबाक-समझेबाक लेल तुलना कऽ रहल छी।

श्राद्ध कर्म केकर ? देह या आत्मा के?

अगिला सवाल उठैत अछि जे यदि देहावसान के बाद आत्मा देह से अलग भऽ कऽ चलि गेल अछि आ दोसर दिस देह कैँ अग्निदाह पश्चात पंच-तत्व में मिला देल गेल रहए तऽ हम श्राद्ध कर्म केकरा लेल कऽ रहल छी? देह के कि आत्मा के? याद राखउ जे परमात्मा सँ मिलै लेल आत्मा मृत्यु के दिन ही रवाना भऽ चुकल छलि, तँ श्राद्ध कर्म करबाक लेल उपलब्ध नहि रहली आ देह मृत्यु के तुरंत बाद पंच-तत्व में विलीन भ गेल छल्हि। तऽ हम श्राद्ध कर्म में तर्पण कियैक आ केकरा लेल करब ?
औरो दोसर प्रश्न उठैत अछि कि यदि देहावसान के बाद आत्मा देह से अलग भऽ चुकल अछि आ देह कैँ पंच-तत्व में विलीन क देल गेल अछि, तऽ फेर श्राद्ध कर्म लेल ने तँ आत्मा बचल अछि आ नें मृत शरीर। तऽ हम किएक अमुक व्यक्ति के देहावसान के ग्यारह दिन बाद तर्पण करैत छी ? की मृत व्यक्ति के आत्मा के किछु भाग ओकर घर में, ओकर द्वारा उपयोग में लाओल वस्तु में या ओकर परिजन में मृत्योपरांत विद्यमान रहे छन्हि जकरा लेल श्राद्ध कर्म कएल जाइत अछि? ई तँ संभव नहि कि अमुक व्यक्ति के आत्मा के एक भाग परमात्मा से मिलै लेल निकल चुकल हो आ दोसर भाग घर-परिवार में अटकल हो।
श्राद्ध कर्म में आएल पात्र महोदय यदि भोजन सामग्री, भोजन पकावै-खाय के बर्तन, जल राखै-पीवै लेल जलपात्र, चलब-फिरब लेल खड़ाऊँ-पादुका, पहनबा-ओढ़बा लेल वस्त्र, सुतबए लेल चौकी, गद्दा, बिस्तर, तकिया, मच्छरदानी, उत्सर्ग के नाम पर पशुधन व श्री-धन (जमीन, द्रव्य-रुपया) आदि मृतक आत्मा के नाम पर लैत छथि जे स्वयं नहि छथि, त ई सब कोनों तरहैँ तर्क-सांगत नहीं अछि । दोसर तरफ यदि ओ सामग्री ओकर आत्मा के सुख लेल

लेबैत छथि तँ ध्यान रहए जे परलोक में ओ आत्मा के मृत्युलोक के सामिग्री भेटत, ई संभव नहीं अछि ।

ई बात विचारणीय अछि जे कोनों आत्मा वा प्रेतात्मा के एहि लोक या परलोक में रहब, पुनर्जन्म या परब्रह्म में लीन होयबाक लेल मर्त्यलोक सँ एहेन वस्तु वा सामिग्री के आवश्यकता होतइ । कोनो ईश-भक्त शास्त्र-विद सँ ई प्रश्न पूछब तँ बेझिझक उत्तर भेटत...कदापि नहि। तऽ ई सब ढकोसला कियैक? हम श्राद्ध कर्म में सैकड़ों-हजारौं लोक के निमंत्रण द कँ एकादशा, द्वादशा के भोज-भात में अनगिनत पकवान, व्यंजन, मिष्टान आदि के भोजन करबैं छी, जाहि में अनेक गरीब के रोजी-रोटी के साधन तक बिक जाइत अछि। की ई सभ तर्क-संगत अछि? आडम्बर नहि? एहि विषय पर एक शास्त्रार्थ होनाए चाही जे श्राद्ध कर्म में प्रेतात्मा कँ श्राद्धकर्ता सँ भक्ति-निष्ठा के अपेक्षा हेतैक वा द्रव्य-पदार्थ व भोजभात के ? आजु के समय में गरीब व मध्यवर्ग के लोकनि एहि सभु आडम्बर के भय सँ भागि गया में श्राद्धकर्म व पिंडदान करावैत छथि मुदा ओहो ठाम पंडा ओ पात्र लोकनि कर्ता कँ आर्थिक रूपेण नोचए-खसोटए लेल तत्पर रहे छथि । सनातन में श्राद्ध कर्म कराए-कराओल में आएल ई विकृति कँ हटाइबाक चर्चा व प्रयास होएबाक चाही । विषय सँ सम्बंधित शंकराचार्य जौं उपयुक्त बुझए, तँ विषय-वस्तु व क्रिया-कर्म में अवश्य हस्तक्षेप या संसोधन करथि ।

कलुषित जीवात्मा के श्राद्ध रूपी शुद्धिकरण

सामान्य तर्क हमरा ई मानय लेल प्रेरित करैत अछि जे राक्षसी वा अमानुषी आत्मा में परमेश्वर के प्रतिनिधि नहि भ सकैत अछि जकरा निर्विकार मानल जाएत अछि । की जीवात्मा अपन जीवित अवस्था में कएल गेल कुकर्म वा सुकर्म सँ प्रभावित नहि होए छैक ? अवश्य

होयत ! जन्म सँ मृत्यु धरि कोनों जीवक अंदर समाहित आत्मा ओकर सभटा नीक-दूषि कृत्य देखै, करै में भागीदार रहे छलाह । जीवन पर्यन्त ओकर सभटा कृति कैँ साक्ष्य सेहो रहैत छलाह । एहि कारणें, ओ आत्मा परमात्माक अंश रहितहुँ बेदाग, निर्मल, शुद्ध, पावन आ निष्कलंक नहि रहि जाइत अछि । एहि लेल कोनों आत्मा जखन शरीर मे प्रवेश करैत अछि तँ ओ कतिनहुँ विशुद्ध किये नैं रहल हएत, ओकर जीवन काल में विकृत भ जाएत छै जेकर कारण सँ ओ कोनो तरहैं परमात्मा मे विलय नहि भ सकैत अछि। ओहि विकृत आत्माक परमात्मा मे लीन होइ सँ पूर्व यथासंभव शुद्धिकरण करबाक लेल श्राद्ध-कर्म, जाहि में दाह संस्कार, अस्थि-विसर्जन आ एकादश-द्वादश के कर्म शामिल अछि, अत्यंत आवश्यक भऽ जाइत अछि।

चूँकि कलियुग में अधिकतम जीव आ प्राणी मे किछु नें किछु पाप वा कुकर्म होयबाक अत्यधिक संभावना होएत छै, तिनकर आत्मा सेहो दूषित हेतइ आ परमात्मा ओ विकृत आत्मा कैँ दूषित अवस्था मे स्वीकार नहि क सकैत छथि। कंप्यूटरक भाषा मे, ई किछु हद तक विश्वस्त रूप सँ कहल जा सकैत अछि जे दूषित आत्मा परमात्मा में विलय लेल अनुकूल (कम्पेटिबल) नहि अछि। एहि लेल प्रत्येक जीवात्मा कैँ परमात्मा मे लीन होवै लेल दाह संस्कार, पावन नदी मे अस्थि-विसर्जन आ ओकर बाद श्राद्ध कर्म द्वारा शुद्धिकरण परमावश्यक अछि। एहि पर एक आओर संभावना प्रवल भ जाइत अछि जे यावत् जीवात्मा कैँ श्राद्ध कर्म सँ शुद्धि नहि देल जाय, तावत संभवतः ओ एक प्रेतात्मा के रूप में अपने घर आ परिवारक आस-पास घूमैत रहल हेतैक।

एक समय ओहो छल जखन अपन पूर्वज सभक कालखण्ड में

अस्वस्थ आ मरणासन्न लोकनि ई बुझि जाइत छलाह जे हुनकर अन्त समय आबि गेल छन्हि आ तखन शास्त्रानुसार हुनकर वैतरणी कएल जाइत छल, जे तथाकथित भवसागर पार करबा में सहायक मानल जाइत छल। तत्कालीन आपातकालीन चिकित्सा पद्धति आधुनिक समय जेकाँ विकसित नहि छल आ मरणासन्न लोकनिक अधिकतया मृत्यु भ जाएत छल। मुदा आजुक समय में आपातकालीन चिकित्सा व्यवस्था एहेन विकसित अछि जे कोनों भी मरणासन्न व्यक्ति कैं पहिने अस्पताल पहुँचाओल के प्रयास केल जाइत अछि जे जीवनदायक तँ होइते छैक, न्याय-सांगत सेहो अछि । ओहि समय वैतरणीक व्यवस्था में समय व्यतीत नहि क सकैत छी। ओ व्यक्ति के जौं आपातकालीन मृत्यु भ गेल तँ ओ आत्मा के, जकर पहिने वैतरणी के सहारा होइत छल, सम्प्रति नहि भेटैत अछि। संगहि आकस्मिक मृत्यु एतेक बढ़ि गेल अछि जे आब लोकनि कए हस्पताल तक पहुँचे के समय नहि भेटैत अछि, वैतरणीक बात त छोड़ि देल जाओ। अतएव एहि कहबाए में कोनो आपत्ति नहि होएबाक चाही कि कलियुग क बाकी काल में लगभग सभु लोकनि छोट-बड़ पापकर्म क भागीदार होएत आ हुनक आत्मा सब दूषित होएत जाएत जाहि लेल दक्ष व सक्षम श्राद्धकर्म अनिवार्य होएत। मुदा ई सक्षम श्राद्धकर्म अछि की?

दक्ष व सक्षम श्राद्ध कर्म

आजु-कालि के जीवन क दौड़-भाग मे, लोक कम सँ कम मेहनत सँ अपन बेशी सँ बेशी काज निकालऽ चाहैत छथि। बहुत कम एहन ब्राह्मण छथि जिनका समुचित वैदिक ज्ञान अछि। आजु के समय के कारखाना आ तकनीकी युग में, कम ही लोकनि अध्यात्मिक ज्ञान अर्जन करऽ चाहैत छथि। ओहिपर भारत क राजनेता सभ

एकटा 'क्षद्म धर्म-निरपेक्षता' वाला संविधान अपनाए क सनातनी आध्यात्मिक उन्नति-उत्थान कैँ बहुत आघात पहुँचौने छथि। वेद-उपनिषदक अध्ययन-अध्यापन तँ मानु ठप्प भऽ गेल अछि। कर्मकांडी पंडित वा विद्वान् के त अभाव भऽ गेल अछि। फेरु निरंतर बढ़ि रहल पापी लोकनिक मृत्यु पश्चात कलुषित आत्माक शुद्धिकरण कोना हएत ? जौं अधिकाँश पंडित कैँ कर्मकांड के ज्ञान नहीं अछि, तँ ओ बढि रहल कलुषित आत्माक सक्षम शुद्धिकरण केना करथिन? सम्प्रति जे ब्राह्मण लोकनि नित्यकर्म वा श्राद्ध-कर्म करावैत छथि, शास्त्र-ज्ञान या कर्म-काण्ड में हुनकर दक्षता पर बड़ प्रश्नवाचक चिन्ह लागल होए छन्हि आ ओ प्रायः असक्षम, अकुशल पंडितक वर्ग में आवैत छथि। श्राद्ध कर्म कराए वाला एहेन सभु ब्राह्मण या पंडित के गुणवत्ता सुनिश्चित करब अत्यावश्यक अछि जे कोनों नैं कोनों उपाय सँ अवश्य करए पडत।

श्राद्ध कर्म में जे परमावश्यक छै ओ थीक जे कर्ता (श्राद्धकर्ता) कैँ चाही जे प्रेतात्मा के सभु सुकर्म कैँ अपन चित्त में राखि पूर्ण श्रद्धा भक्ति सँ श्राद्ध कर्म ई निमित्त सँ करू जे परमपिता परमेश्वर ओ आत्मा कैँ अमुक व्यक्ति के जीवनकाल में कएल गेल पापकर्म के साक्ष्य रहल अकर्म या दुष्कर्म कैँ क्षमादान द कैँ अपन शरण में लीन क लिये। अक्सर देखल गेल अछि जे कर्ता में प्रेतात्मा के प्रति श्रद्धापूर्ण निष्ठा के अभाव होए छैक जे अक्षम्य थीक। एकरा लेल श्राद्ध कर्म करवावे वाला पंडित-पुरोहित सेहो जिम्मेवार अछि जे कर्ता कैँ एहि विषय पर समुचित मंत्रणा - परामर्श नहिं देलन्हि।

सारांश

सभु जीव में अंतर्निहित आत्मा निश्चित रूप सँ परमात्मा केर द्योतक

होइछ, मुदा दुष्कर्म कराए वाला, पापी लोकनि के आत्मा मृत्योपरांत कलुषित भ निर्विकार परमात्मा में लीन होवै लायक नहि रहि जाइछ। मरणोपरांत प्रेत-योनि सँ मुक्ति आ स्वर्ग वा मोक्ष प्राप्त करबाक लेल ओहि कलुषित आत्माक शुद्धिकरण अति आवश्यक भऽ जाइत अछि, नहि तँ ओ आत्मा प्रेत-योनि वा पुनर्जीवन मे ही फँसि जाइत । एहिठाम श्राद्ध-कर्म के बड़ महत्त्व अछि जे हुनकर शुद्धिकरण करि अलौकिक पथ-गमनक कार्य सम्पन्न करैत अछि। एहि में मुख्य समस्या एक सक्षम आ ज्ञानी कर्मकाण्डी के अभाव अछि। अधिकांश श्राद्ध-कर्म कराओल वाला ब्राह्मण या पंडित कैं कर्मकाण्ड के विशेष ज्ञान नहि होइत अछि। भारतीय संविधान सेहो एहि लेल जिम्मेवार छैक, जकर कारण सनातन धर्मक अवनति भऽ रहल अछि। आब के एहि युग में मानय पड़ैत जे मनुष्यक दुराचार व पाप के दुष्प्रभाव हुनकर अन्तर्निहित आत्मा पर सेहो पड़ैत अछि, जाहि सँ ओ दूषित आ कलुषित भ जाएत अछि, आ एहि लेल मृत्युक पश्चात लगभग सभु कलुषित, दूषित आत्मा के श्राद्ध-कर्म एक गुणी पंडित द्वारा सक्षम व उचित रूपेण करौनाइ अनिवार्य अछि।

-ग्रुप कॅप्टन (डॉ) वी एन झा; सेवा निवृत्त वायुसेना अधिकारी; मुख्य, वायुसेना चिकित्सा अनुसन्धान प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष ओ स्नातकोत्तर परीक्षक (RUGHS वरिष्ठ वैज्ञानिक F व सह निदेशक (डी आर डी ओ)
सदस्य, Institute of Defence Scientists & Tech (IDST)

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**

पद्य

२.१.जगदानन्द झा 'मनु'- बीसटा हाइकू

२.१.जगदानन्द झा 'मनु'- बीसटा हाइकू



जगदानन्द झा मनु

बीसटा हाइकू

१

चान सूरूज

लटकल कोना क

जँ ईश्वर नँ

२

सिंगार केलौं

प्रभु अहाँ सृष्टिक

अंग-अंगकेँ

३

करुणानिधि

किएक चुप्प अहाँ

ई दिन देख

४

एलौं शरण

अहाँ शरणागत

शरण लिअ

५
हे सलहेश
लोकक करेजामे
वास अहाँक

६
चंचल मोन
हरिकेँ बिसरल
जगमे आबि

७
देख मैयाक
अदभुत सिंगार
मोन जुड़ेलै

८
आँखिक लाज
बेच कय खा गेल
आजुक लोक

९
मुर्गा सस्ता
धर्म बचत कोना

साग महग

१०

नै अरजब

गरीब कहायब

हम्मर मोन

११

गामक भोज

जन्म मरनपर

जीवन भरि

१२

बाबू बिसरि

ससुरकेँ पापाजी

नीक चलन

१३

मोनक सीमा

खत्तम नहि हेतै

जा धरि जीव

१४

बारीमे साग

दुरापर पाहुन

चाहैं छै माछ

१५
चुप्पी नीक छै
तहन हल्ला किए
सब जनैं छै

१६
परिवारमे
खटपट किएक
नाम खातिर

१७
हम खुश छी
तैं एखन कतेको
बड़ दुखि छै

१८
मायक शौख
पिता केर सपना
जगिते खत्म

१९
डीहक मोह
पेटक आगि संगे

जरि गेल छै

२०

अपने मोने

एतेक विद्वान के

एहि जगमे

-जगदानन्द झा □मनु□; मो०न० +९१ ९२१२-४६-१००६

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**

Maithili Literature in English Translation

3.1.Lotus Root (Bisandh)/ The Parched Seeds of Lily Fruits (Bhentak Lava)- Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story) Dr Ram Ashish Singh (English Translation)

3.2.Between Two Grindstones/ One Stroke, All Accomplished- Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story) Rameshwar Prasad Mandal (English Translation)

3.1.Lotus Root (Bisandh)/ The Parched Seeds of Lily Fruits (Bhentak Lava)- Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story) Dr Ram Ashish Singh (English Translation)

1.Lotus Root (Bisandh)/ 2.The Parched Seeds of Lily Fruits (Bhentak Lava)



Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story)



Dr Ram Ashish Singh (English Translation)

I

Lotus Root (Bisandh)

For the last four years of drought, the village had lost all its colour. The once green land, filled with trees and crops, ponds brimmving with water, and fields alive with hundreds of birds, insects, cattle, and goats, now lay lifeless. It looked like a silent cremation ground. Everyone carried the same thought in their hearts that the village could no longer survive. And even if it did, it would remain nothing but dry earth. For what could the people of a land live on if no grain grew to eat and no water remained to drink? Would they survive on air alone?

The same sacred soil whose glory people had sung for generations now lay bent and defeated under the weight of four years of scorching drought. Yet, amid the breaking

of hope, tiny new buds of faith continued to sprout. And why would they not? After all, this was the kingdom of Janak, Mithila. The same land where twelve years of famine had once yielded the fruit called Sita. In such a kingdom, perhaps, such a miracle might happen again. On one side, the drought carried its deadly arrows; on the other, the arrows of hope kept returning with greater radiance.

Even in such despair, the husband and wife, Doman and Sugiya, kept their hope of life alive as if it were an ordinary season. With a spade resting on his shoulder, Doman walked ahead, while Sugiya followed behind with a bamboo basket balanced on her head, filled with singhi fish and freshly dug bisandh, the tender lotus roots found deep in the mud. Talking about the small things of life, they returned home from the large pond toward their courtyard. Wiping the sweat from her cheek with her right hand, Sugiya smiled and said, “Why will those persons who know how to work for their food and drink ever worry? "

Hearing her, Doman turned to look at his wife’s face but said nothing. He lowered his eyes and kept walking forward. His worry was not about food, but about water. Doman owned no land of his own, yet both husband and wife were so hardworking that even with nothing they

managed to live with dignity. Though skilled in all the tasks of a household, Doman had never been bound by one. Still, whenever work came, in good times or bad, he never refused it. He had no fields, so he could not farm on his own, but every year he cultivated ten kathas of madua (finger millet) on a sharecropper’s basis. From that he usually brought home five maunds of grain.

Raising a madua crop required hard labour. Every day the seedbed had to be watered and levelled. At the start of the Rohain (the name of a constellation) month, Doman would sow his seeds along the edge of the big pond. With water close by, irrigation was easy. The soil there was deep and fertile, so the crop sprouted well. Within fifteen days, the seedlings were ready for transplanting. When the rains arrived around Mirgisra (a constellation), Doman would always be among the first to plant his madua, but this year it did not happen. Without rain, the seeds withered in the dry soil. Not a single patch of madua grew in the village.

Nor had anyone yet plowed the paddy seedbeds or soaked rice seeds. The signs of drought had begun to appear in everyone’s mind, yet no one wanted to believe it. People kept hoping because the propitious constellations were still delayed, and perhaps the rain would come late.

But just as Rohain and Mirgisra constellations had passed

in vain, so too did Adra constellation. The season itself seemed to be slipping away. By ten in the morning, people returned home from the fields because of the fear of the burning wind. Without the madua crop, worry crept into the hearts of Doman and Sugiya.

The next day, the two returned from the big pond with bundles of old leaves on their heads. On the way home, Sugiya said, □This year not even a handful of madua has grown. In other years, even on sharecrop we had enough to last the whole year. This time even our daily meal will have to be bought.□

The bundle of old leaves on their heads dripped with water, soaking Doman and Sugiya halfway down their bodies. Wiping the sweat and water from his nose, Doman replied, □It is not only we who have lost our crop; no one in the village has any either. If others had succeeded and we had failed, that would have been painful. But when no one has anything, why should I grieve alone? What happens to the rest will happen to us too. At least we still have the work of collecting old leaves for fuel, and what about those who do not even have that?□

Hearing her husband□s calm answer, Sugiya smiled faintly and said, □Yes, that is true. But thunder may strike anywhere; who can lift a hand to stop it? This

drought is the stick of God Himself. What power do people have?”

Until then no one had dared to call it a drought. Everyone believed it was simply God’s play. Some years the rain came early, some years late. Some years too much, some too little, and sometimes not at all. When the rain came early, the fields flourished and the households prospered. When it came too late, the crops were half-grown, stunted, and weak.

When even the Hathiya constellation passed without rain, everyone began to accept that this year would be a drought. From the unplowed and unseeded fields, clouds of dust rose into the sky. There was no trace of grass or greenery anywhere. Yet could people simply give up? Never. The villagers of Mithila had long learned to live with their chests out and backs unbent; they would not show defeat.

Perhaps, they thought, Lord Indra was saddened by something and had turned away in anger. He must be appeased. Once His heart softened, everything would flourish again. With this belief, some began offering food to the hungry, others organized kirtans, ashtayams, and navahas. Some performed Chandi yajnas, others Vishnu yajnas or worship of Lord Mahadev. Many kinds of offerings and rituals began throughout the region.

Even the women class started offering goats and kids to the goddesses, Kamla and Kosi. If their mercy were awakened, they believed, there would be floods instead of drought. The ponds, lakes, meadows and hollows would be filled again. The drought would vanish, and even the half-starved fields would yield grain once more.

Seeing the stubborn dry season continue, Nengra Kaka stopped money-lending. He understood that this drought would cause starvation the next year. But Bouki Kaki, his clever neighbour, lent her rice at twenty percent interest. Her stock was small to begin with, only enough for a few months, yet it always lasted until the festival season. Bouki Kaki’s lending business usually began around Matr-Navami and Pitri-Paksha and grew busy through the months of Durga Puja, Kojagara, Diwali, Govardhan Puja, Bhardutiya, Chhath, and Sama. By the time Sama arrived, her earnings were plentiful, for she would not only offer newly beaten rice to the goddess but also share it with others. By then, the new paddy would be ripe in the fields.

But this time Bouki Kaki failed to realize that a true drought had arrived. She kept nothing for herself to eat. Like the poor farmers who had no harvest, Bouki Kaki, the moneylender, was also left with nothing.

By the time the month of Aghan came, worry spread

through every household, what they would eat and what they would feed their cattle. Usually by the end of Kartik, people had already arranged food and fodder both for themselves and their livestock. But this year, except for Nengra Kaka, everyone�s supplies had been spoiled. At last even the rice seeds stored for planting were pounded, cleaned, and eaten.

There was no hope of growing rice that year. Even if it rained now, sowing or transplanting would be impossible. Suddenly everyone realized the truth, and fear began to settle deep in their hearts. As time passed, anxiety spread like weeds. Hearths went cold. Time stood before them like a gaping demon, mouth wide open.

Worry turned into illness. Every morning, sounds of quarrels and crying children echoed through the village. Women began calling their husbands lazy and unlucky; men called their wives witches. Their fights rose with the cries of the children until the whole village seemed to dance in misery.

Yet, even in such a time, Doman and Sugiya remained untouched by fear. They had already begun their trade in puranik leaves (a water plant) used as food plants since Judeshital (a Mithila festival) and that small business was going well. The big pond covered fifty-two bighas of land, full of puranik plants. The market too

was good, buyers came from Nirmali, Ghoghardiha, and even old and new bazaars of Jhanjharpur.

Sugiya worked alone, yet she sold plenty. People who bought the dried leaves ranged from sweet-makers and snack-sellers to those arranging feasts and ceremonies. Because of this, they managed to make a living every eight days.

All day long Doman gathered leaves, tearing them off and piling them up. Sugiya would tie the bundles neatly the next day, and on the third morning she would take them to the market by cart. The leftover leaves were left by Doman to dry, because even dried leaves fetched a price.

Returning from Nirmali after selling her load, Sugiya said to her husband, “This drought has turned in our favour.”

Hearing that, Doman smiled and asked, “How is that?”

“All the traders have bought up their stock,” she said. “The ponds in every village have dried up, and people have stopped collecting leaves. Only our bundles are reaching the market now. As soon as I unloaded the cart today, the shopkeepers crowded around. Everything was sold in a flash.”

Doman replied, “You should have raised the price. You could have doubled what you earned.”

Sugiya said, “I’ll do that next time. Anyway, now the

barries too are getting ripe, aren’t they?”

Doman nodded and said, “A few of them have ripened. Let’s wait another five days before picking them, as we will have to pick and so choose among them.”

By the third year, only one large pond and five wells in the entire village still held a little water; the rest had gone dry. The big pond at Andaha was sacred, for it had been dug by divine hands. No one else could have made it. That was why every family took their sons there to bathe before weddings, and why, during Chhath, people offered prayers there with raised hands.

The very earth of this region is strange, solid clay, like a buried hill. Five hundred feet down there is neither a spring nor a trickle of water. Just dense soil. That is why no hand pump or tube well works in the village. People must go to neighbouring villages to fetch water.

The livestock had perished. Some people sold their cattle, others watched them die for lack of water. More than half the trees had withered away. Birds and insects had vanished. The very people who once held seven weddings in a season to the sound of brass bands were now either dead or missing. Half the village had fallen ill. Yet the stubborn few still refused to leave. The men had gone away to earn a living in distant towns, but women, children, and the lower communities remained behind,

clinging to the empty village.

When the ponds and wells began to dry, people started digging new wells around the large pond, each family making its own. There was still a little water, though not enough to meet everyone’s need. The three years of drought had left the whole region exhausted, yet for Doman and Sugiya it was still their only way to live. Their work remained the same as before, but the income had fallen to less than half.

As land prices dropped across the village, Doman managed to buy a small piece of land. Sugiya, however, was not pleased. She feared the drought would continue, leaving the fields barren. “What is the use of buying land,” she thought, “when there will be no grass for the cattle and no water for the crops?”

But Doman held onto hope. He believed that just as a barren woman can one day give birth, the dry fields too would revive when the rains returned. After all, this was Mithila, the land of sages and seekers, where people had long believed in sacrifice for the welfare of all living beings. The elders had known well that rain alone could not be trusted; that was why they had built eighteen large ponds, twenty-seven wells, and countless irrigation pits across the plains. They had ensured their own supply of water for the worst of times.

For three years Doman and Sugiya lived in fragile peace, but by the fourth year unease returned. Every pond and well in the village had already gone dry. Only the great pond still held a little water, and even that had shrunk to a corner. Around its edges the earth had cracked, and in the middle only a few patches of lotus remained, surrounded by thick, thigh-deep sludge. It was dangerous to step into; one sank immediately.

Helpless and weary, Doman began to lose heart. He thought, “If everyone else has left, perhaps I should go too. There is no sense dying slowly here. Life must be saved first; when the time changes, I can always return. And if not, then let fate take me wherever it will.” The village had emptied, the people were scattered, and Doman, standing in the silence, began to prepare himself to leave as well.

Seeing her husband troubled, Sugiya asked softly, “Is something wrong? Why do you look so downhearted?”

Doman lifted his eyes toward her but quickly lowered them again. Sugiya repeated, “Are you feeling unwell? Is it your body, or your mind?”

Raising his head again, Doman said, “My body is fine, but my heart feels heavy. The hopes that kept me going till now are all gone. I see no sign of anything ahead. What can I do now?”

Sugiya replied, “Nothing happens by our will. The same God who gave us life and speech will also give us food. Why worry so much?”

Doman said, “Everything is gone. This beautiful village is dying. Only dry soil remains. Shall we dig the earth and eat it? How long can one live without food or water?”

“Stop worrying,” said Sugiya. “Whatever is written will happen. For now we still have food and water. As long as this earth holds grain and water meant for us, we will find it. When our time ends, who can stop it? So why trouble your heart?”

Saying this, Sugiya turned toward the hearth and began to prepare the meal.

Listening to her, Doman thought to himself, “I fear death, but she does not. She seems ready even for that.” Then another thought rose in him: life and death have always wrestled with each other; to retreat from that struggle is cowardice.The man who is coward should not live in the world in the hope of better life. Looking at himself, Doman felt as if he had lost the very path of living. That was why the weight of worry pressed so hard on his heart.

He took a pinch of tobacco, mixed it with lime, and placed it in his mouth. As the taste spread, his thoughts

galloped like a horse through memories of his parents and ancestors. His mind wandered far, then circled back to his mother. He remembered the life he had spent with her, and her words about a drought when he was ten years old.

The memory of that old drought brought before his eyes the image of the big pond, the lotus roots glistening in the mud, and the fish hiding in its dark water. For a moment he sat still, lost in the quiet pull of those memories.

He remembered then that in the same old pond’s bed, lotus roots still grew beneath the mud. Just like the yam that lies buried under the soil, bisandh, the root of puranik plants lies buried under the pond bed. Words escaped his mouth before he knew it.

“By God! In that fifty-two bigha pond, how many lotus roots there must be! And there will be fish too, singhi and mangur hiding in the pits.”

Two gains in one plan. As the thought brightened his mind, Doman called out to his wife, “God is truly great. Just as He created countless creatures, He also arranged their food.”

Hearing this, Sugiya was startled. She could not make sense of his sudden excitement and stood staring at him, her mouth half-open. Doman looked at her and said,

“Put out the fire. We’ll go out and eat after we return.” His enthusiasm made Sugiya uneasy. She thought, “Has he lost his senses? A moment ago he looked half-dead, and now he is so alive.” Unsure what to say, she stood silently.

Doman spoke again. “Didn’t you hear me? First put out the fire, bolt the door, and take a basket. Come behind me. "

“Where?” she asked.

“To the big pond.”

“For what?”

“Food lies buried there, waiting for us in this drought. Come, we’ll dig it out.”

Without more questions, Sugiya covered the hearth, bolted the door, took the basket, and stood ready. Doman lifted his spade, and the two set out, he walking ahead, she following behind.

When they reached the pond embankment, Doman pointed toward the dried basin and said, “All that dried belly of the pond is full of food. There will be no shortage to eat or to drink. As the water goes down, we’ll dig deeper wells. Where the old lotus stalks have dried, there beneath them the bisandh will be growing thick as ropes.”

Stepping into the pond bed, Doman measured three paces

south to north and three east to west, marking the ground with his spade. It covered roughly one dhur. At the northern and eastern corners he struck the earth. The soil was so hard that the spade barely entered. He struck again with more force, but still it did not sink. Looking ahead, Doman guessed that the earth farther on might be softer and easier to dig. His heart leapt with hope. Moving forward, he said cheerfully, “Hey, look here, woman, am I not a man? See, even the soil refuses to yield to me. You are my better half, try striking it a few times yourself.”

Sugiya laughed. “First wear my bangles and sari and give me your dhoti. Then I’ll show you how to dig.”

Smiling, the two moved ahead together. A few steps later, the soil indeed felt softer. Doman struck with the spade again; the ground yielded. Measuring another dhur, he began to dig. On the sixth stroke the tip of a lotus root appeared.

Seeing it, Doman shouted with joy, “Look! This is the bisandh!”

Sugiya replied, “Just from that tip you cannot tell. Dig the whole thing and show me first.”

Her words made Doman cautious. He feared that if he cut too deep, he might slice the root in half. Holding the tip gently, he bent down and began loosening it with his

hands. It did not budge. Shifting a little aside, he struck again with the spade. The next stroke revealed one full root, then another, and then a third.

Together they dug all three out, staring in wonder at what they had found, white and shining, round and smooth like polished bamboo, thick and long as an elephant’s tusk, each about a hand’s length or more, weighing nearly half a seer.

When Doman looked toward his wife, he seemed to see his life of fifty years spread before him. When Sugiya looked back at her husband, she saw the red glow of vermilion in her parting and the soft music of her bangles.

Carrying a basket full of fresh bisandh and four seers of singhi fish, the two of them—Doman and Sugiya—walked home together, their faces lit with quiet joy.

2

The Parched Seeds of Lily Fruits (Bhentak Lava)

The memory of the last flood still makes the body tremble. Every hair stands on end. The terrifying sight of that deluge begins to dance before the eyes. Water raced faster than a horse. The flood was no minor one, not a young but an old one, an ancient and fierce spirit dancing in wild rhythm. There was no longer any sense of what was a big stream and what was small; each

merged into one vast sea, erasing familiar boundaries. Wherever the eye turned, muddy, swirling water spread endlessly, flowing southward with unstoppable force. Many villages and houses disappeared, leaving people homeless. Wells, ponds, borings, and hand pumps all sank under the flood. The sight was so dreadful that people, trembling with fear, grew thirsty but found no water fit to drink. Life and death stood face to face, mocking one another. Houses collapsed, granaries crumbled, and the stored grain was ruined. Along with the falling homes perished cattle, trees, and crops alike.

Tying together the few clothes and utensils left, Musna bundled everything into a sack, set it on his head, and fastened two strings of straw around his own waist and his son□s. Holding his little daughter Dukhni close to his chest, he and his wife Jeebchi walked toward the high mound beside the pond.

That mound had once been a wild patch of weeds, thorns, and a public latrine area where snakes and insects made their nests. Now the flood had turned it into their refuge. As shadow never leaves a man in sunlight, so the rain refused to leave the flood. Below, the water surged with full strength; above, heavy drops kept falling. By the time Musna reached the mound, twenty or twenty-five families had already arrived there with their children,

belongings, and livestock.
Finding a sloped spot near the edge for convenience, Musna placed his bundle down. He broke branches from a nearby tree to make a frame and began to tie them together. He tested the structure once, felt unsure, and then rebuilt it carefully, smoothing it with his hand until it felt right. Pleased with the solid spot they had found, Musna and Jeebchi unpacked one sack, drove four bamboo poles into the ground, and tied them with straw ropes to form a shelter. On the other sack they spread a mat, settled the children, and placed their few belongings safely around them.
When worry dried their faces, both of them fell silent. On one side they kept watching the two children, on the other they stared at the roaring flood. With hands pressed to their foreheads, Jeebchi and Musna muttered prayers to the river goddesses, Kosi and Kamla in their hearts and begged for their lives. The children sometimes laughed at the flood and sometimes shivered with cold. At the speed of the water a house loosened and began to slide; Musna grabbed a bamboo pole and a clump of brush and ran with them. The current threw up splinters and for a moment it was hard to tell which way the house would tilt. With utmost care he fixed five poles in the ground hurriedly. Slowly the house came and wedged

itself on the poles; seeing the house lodged there, he called out and ordered his wife, “Bring a sickle quickly. Carry the household things as they are and go.”

A dog had also been carried away on the roof of the house. Hearing people mutter, the dog leapt and climbed up to the mound. Where Musna had planted the pole for the shelter, a snake suddenly lunged and bit him on the hand. The leg stuck into the mud could not bear the home’s weight. All five legs sank into the water. The house collapsed. Musna wailed loudly, shouting and calling for help, “People, run! Run, someone, the snake has bitten me.”

Hearing Musna’s cry, Jeebchi also started to convulse with tremors. As the convulsions began, he cried out, “Oh Dukhni’s mother, the snake has bitten me. The poison has spread across my chest. Only a little remains to touch the throat. Show me the children for a moment. Now I will not survive.”

Jeebchi shouted and seized the arm of her husband dragging himupward. They reached the mound’s slope, and when they tried to step up, both of them slipped back and tumbled down to the lower edge. Both were soaked through and more drenched, yet still they scrambled upward. Once on the mound, Jeebchi pulled a scrap of cloth from somewhere and pressed it against

the wound. There was not a single person in the village who could draw out snake poison. But Roudiya had learned how to suck poison during the autumn festival. Everyone began to search for Roudiya.

Roudiya had gone to the embankment to catch fish with his net. Someone called him. Roudiya set the net aside, washed his hands and feet by the bank, and came to Musna saying, “Brother, my sucking is not perfected yet because I have not bathed in the Ganges even now. Still, I will try to draw the poison.”

Roudiya brushed the ground clean before Musna and pressed his lips to the spot to draw the poison. Everyone watched him. But nothing happened. The sucking did not work. Because of the flood, it was impossible to summon a healer or a poison-sucker from another village. People grew hopeless. Beating her chest, Jeebchi wept and called upon the gods and goddesses, making vows of offerings. Yet since the snake that had bitten Musna was a blind snake, the poison had not spread.

Meanwhile the villagers began to move about. The old and the young, men and women, gathered at the edge of the pond, carrying small earthen lamps filled with raw clay and mustard oil. They offered them to the goddess Kamla, singing evening hymns. The children shouted in chorus. Among them Lukhia promised an offering to

Kamla Maharani, one seer of sweet pudding. By the next evening everyone had finished the songs and returned home.

The flood raged for five straight days. But as dawn broke on the sixth day, the water began to fall. Floodwater comes with a roar and goes the same way.

By dusk the water drained from the courtyards and fields, though puddles and silt remained. From the seventh day onward people started rebuilding their homes. As soon as the flood receded, many set out again toward the cities in search of work. Not a grain of paddy was left in the village, and the fields could not be replanted. The haystacks and stores of straw had been swept away without a trace. The husks of wheat rotted into dung in the mud. Cattle suffered even more than humans. People cut down leaves of mango, bamboo, and other trees to feed them. From other villages they bought and carried bundles of fodder and husk. Yet the livestock died helplessly. Those that survived grew thin like dry sticks. Then, as if to deepen the misery, diseases of every kind spread among them, some had hoof disease, some dysentery. A few families gave their remaining cattle to relatives in other villages for safekeeping.

After four days the local official arrived. Srikant, exhausted like a half-dead man, sat on the veranda

drinking tea after smoking bhang mixed with tobacco. He brooded bitterly: the moneylender has left, but how will we ourselves survive the year? All the paddy was eaten up. A great mistake it was not to save even one basketful. Yet what difference would one basket make? Who would help whom? People are right when they say everyone must live on his own strength. Even the neighbour□s stored grain has sprouted and spoiled. If someone comes to the door, I will show it. But I too am in need, where will I find more? The rice in the granary is all that remains. Not a single handful of paddy is left to give hope for the winter crop. Cultivation will not restart now; the next harvest can only be hoped for in the coming season. Those who buy and sell daily will manage, but what will people like us do?

While sipping tea, Srikant felt a lump in his throat. He remembered, □Father used to say, if someone comes to the door asking for two seers or two handfuls, do not turn them away. That is how Lakshmi visits.□

Seeing Jeebchi approach, Srikant called out to her. All year long she had ground grain for others and earned her keep that way. In the village she was the most skilled at pounding rice and chura.

Jeebchi smiled and said, □Why are you so gloomy, uncle, even if you have so much? Will I die when I have

nothing? "

Hearing Jeebchi, Srikant replied in a rough voice, If everything had been swept away by the flood and we ourselves had perished, that would have been better. Now when we have survived, we have to suffer the misery. "

Jeebchi, smiling, said, Why worry so much in a single flood, uncle? Whether it is better or worse, the days will pass.

Musna sat on the embankment smoking his pipe. He ground his teeth and thought to himself: the months of Aghan and Pus used to pass with bare hardship. We would save ten seers and manage somehow. Those savings are gone. Not a single sack of paddy remained anywhere in the village, nor a single rat to be found.

Then another thought struck him as he drew on his pipe and exhaled smoke: if only he could get a bowl of rat and the grey rice porridge in the cold months, what better comfort could there be? Such food would be enough to satisfy even the poorest. Oh God, you have taken the poor mans happiness away.

Musnas first name was Makshoodan. But people began to call him Musna for his love for a rat and rat's alley.

Jeebchi was cooking flatbreads on the courtyard stove. Musna returned from the well with a pot of water for the cooking and sat down to watch the fire.

Jeebchi took a piece of bread and salt from the tin box and placed it before her husband. Noticing the children□s hunger in the yard, Musna made a loud, urgent noise.

Hearing his father□s call, Dukhba came running, washing his hands and feet as he entered, and sat down to eat. Father and son began their meal together. From beside the hearth, Jeebchi smiled and said, □Everyone talks, but only those with skill will live. Just look around here, every house has its own tale of loss. Everyone cries and complains.□

Chewing his bread quickly, Musna looked at her and said, □So many fish have floated in with the flood that the pits and ditches are full and splashing. If only the water goes down a little, as soon as it settles we will start fishing. We will eat some and sell some. At least a few coins will reach our hands.□

Thinking of her own natal village, Jeebchi began to speak. □In my father□s village the Gandak comes from the west and the Kosi from the east. Every year the floods come, but the stream between them keeps turning and twisting. The whole village used to shine with water like a lake in the month of Sawan. Only one patch of fallow land stayed dry like an island. On that patch everyone built huts for the rainy season. By the time Kartik came, the fields would begin to dry, and afterward people would

start cultivation. In the deep low fields and marshes, the lily fruit (bhent) plants would sprout and grow thick. By the month of Aghan they were ready for harvest. We would pluck the bhent pods, take out the grains, dry them, and roast them into lava. There would be enough to eat and to sell. Tomorrow I will go to Girhat uncle (landlord) and ask him to give us the bhent that has sprouted in the corner field.

Until now Musna and Jeebchi had earned their living by pounding rice and flattening chura with the hand-pestle, because there was not a single small machine or mill in the village. Most families kept their own mortar and pestle. Musna too had his for pounding rice. Everyone agreed that Jeebchi made the finest, cleanest rice. This time the rice mill would not work, but in the flood so much bhent had drifted in from other villages that the whole field was covered with its creepers. Jeebchi kept her thoughts to herself, not revealing her plan to anyone. Every day during her bath she went to the field to look at the bhent. The broad leaves had covered the land. Within a few days buds appeared and began to bloom. Seeing the flowers, Jeebchi wondered whether such a garden might belong to Lord Indra himself.

Within five days the entire field burst into bloom. Soon the petals began to fall and the lotus pods hidden

beneath began to appear, round, green, and shining. Watching them, Jeebchi could almost see her future taking shape. Sitting quietly at the edge of the field she dreamed that this year she would buy a fine buffalo. If the lotus harvest did not yield enough for a buffalo, she would buy two cows instead. That would be their own wealth. She would graze them well and care for them tenderly, and from them their livelihood would grow.

All her life she had earned her living by pounding grain, but this year she felt that Kamla Maharani and Kosi Maharani had finally blessed her with compassion.

Quietly, in her heart Jeebchi touched the feet of Kosi and Kamla. As soon as she touched them, thoughts rose in her mind: if I had my own wealth and worked hard on it, no poor fortune would steal my happiness. I would build a strong house, arrange my children’s marriages. I would have grandchildren, and as long as I live I would be less dependent on others. Now everyone is helpless. If you do something, everything is possible; without doing anything, nothing will happen.

Seeing the ghangar tree, Jeebchi thought that if she uprooted some of the trees between the rows, the vines would crawl over and the pods would become plump; even with the scattered trees left, the pods would be plentiful and good. Income could start right away.

Filled with hope, Jeebchi began to clear the bhent plants. But the effort of pulling up the vines tired her so much that her back began to hurt and she stopped. Before long the pods began to redden. Flowers followed, then pods- tender, clean, round, and green. Seeing the healthy pods Jeebchi knew they were ready to be harvested. From the next day she planned in her heart to begin picking the pods.

At dawn the next morning Jeebchi baked flatbreads for the children and the two elders. They finished eating, picked up a plastic sack, and set out to collect the pods. Then a thought struck her: we can put the pods in the sack, but how will we dry them if they are wet? Where will we put the pods once we pick them from the water? Good sacks are not our own. What should we do?

Quickly Jeebchi tore an old saree and stitched two small sacks. She put the sacks into one bigger bag and left the courtyard with both children and the two elders, heading toward the field.

The colour and shape of the pods delighted Jeebchi. But ignorant of the work□s realities, Musna argued and hesitated. When they reached the edge of the field, which had dried up, they placed the children, the bags, and the food at the higher strip and, wading into the shallow water, the couple began to pick the pods.

As she stood in the water, Jeebchi’s sight was drawn to the pods dancing on the surface like coins found by chance. Her heart leapt with joy. Without a pause, she began to pluck the pods eagerly with both hands. Seeing the plump pods, Jeebchi told her husband, “Break off the pods near the roots; leave the flimsy ones for now. We will pick them later.”

As soon as the sacks were full, Jeebchi climbed up and placed them in the larger bag. Musna did the same. When both bags were full, Jeebchi said to her husband, “Rest a little tomorrow. Bending in the water must have hurt your back. You stay here; I will go and bring what I left in the yard.”

Jeebchi picked up one bag and left for the courtyard. The load was heavy from the water and the wet things, yet she hardly felt the weight. After all, this was the beginning of their assets. She put the bag down on the raised platform and went back toward the field. Then she told her husband, “I will carry the bag. You look after the two children and the bucket.”

Carrying the bucket in one hand Musna walked ahead along with the children and Jeebchi followed with the bag on her head. After moving a short distance, Jeebchi said to her husband, “God has taken our sorrow away.”

But Musna did not feel the same joy hearing his wife

say that. Back in the yard, Jeebchi set the first bag down and placed the second beside it, then began to arrange for cooking food. On the fourth day, while they were harvesting the first load of bhent, Musna felt a sharp pricking in his arm. At first he did not understand. When the prick turned into a swelling and began to bleed, he noticed what it was. Seeing the leech (blood-sucking worm) Musna’s heart sank. He began to tremble. He cried out loudly to his wife, “Oh my God! It has drawn all the blood from the body. What sin have we committed that we fall into this misfortune? First the flood destroyed us putting us on the verge of starvation. Now the leech has sucked all my blood. If this continues I will fall into the water.”

Jeebchi, gnoring her husband’s words, kept picking the pods while thinking to herself, “He pretends to cry as if a cobra has bitten him. How will he run the family?”

When the two sacks were full, Jeebchi came to Musna, took the bug in ber hand and tied it in a weed. But blood kept trickling out from where the bug had sucked blood. Jeebchi pressed it with her right thumb. After a little while the bleeding slowed and clotted. She returned to the water to continue picking pods while Musna sat down. After some time Jeebchi said, “Come now, nothing more will happen.”

Hearing Jeebchi, Musna said, wiping his eyes, “This woman is trying to kill me. She wants me to die. If I die, she will marry another person.”

Looking at the two children, Musna added, “But what will become of these kids? Will they not die of hunger?”

Jeebchi smiled at her husband and said, “If you will not break the pods, then do not. Sit there and watch the children play.”

After filling both sacks, Jeebchi carried them to the courtyard. Musna followed, bringing everyone along safely.

Once home, Jeebchi lit the fire and cooked a meal. The two children and the couple ate together. After eating, she began to split open the bhent pods with a sickle and take out the seeds-red, round, and full. Musna also joined her. The two children sat nearby, rolling two pods and playing.

Jeebchi piled the seeds carefully on a mat. After a while, Musna felt like smoking his pipe. He went to the hearth, lit a fire, and began to smoke. Seeing the growing heap of seeds, Jeebchi wondered where they would store them. As she thought, a memory of her mother’s home came to her mind, and she smiled.

Seeing her smile, Musna asked cheerfully, “Hey woman, what treasure have you found that makes you smile like that?”

Jeebchi changed the subject and said, “It is already dark now. Tomorrow morning I will dig a pit near the yard and spread a mat over it. We will keep them there.”

The next morning Musna dug a round pit like a lidless pot. Jeebchi cleaned and dried it. Into that they placed the bhent seeds to dry. Musna covered it from above with a mat.

After a month of work, Jeebchi’s courtyard was full of bhent seeds. Since it was an unknown grain, there was no fear of theft. Seeing the courtyard filled, Jeebchi’s heart leapt with joy like the waves of the sea. Her eyes glistened as she smiled toward Musna. Seeing his wife smile, Musna frowned and said, “You laugh at me. Laugh as much as you can while you live. When God finishes His work and you die, then your laughter will amuse the city folk.”

But Jeebchi paid no attention. Her mind was overflowing with happiness. She began planning how to roast the seeds into lava. For roasting, she would need a large pan, and a big bowl for keeping sand.She would make the frying sticks herself out of bamboo and bring the sand from the riverbank. When she went to the potters’ place, she would look for a heavy slab to make the pan. For heating the bowl, an ordinary earthen stove would do. She would also need a small ladle because the sand could

not be handled by hand alone. For that a wooden holder would have to be fixed in it too. She would manage all that. Turning to Musna she said, “For roasting the lava, we will also have to arrange some fuel.”

The word 'lava 'filled Musna’s heart with pleasure. Smiling, he said, “I will go now and bring some dry branches from Girhat uncle’s orchard. I will collect both dry and half-dry wood by evening.”

All day long Jeebchi and Musna arranged everything they had gathered. As soon as dusk fell, Jeebchi began roasting the bhent seeds into lava. She had lit two hearths, one held the pan and the other the bowl. In the pan the bhent grains roasted, and in the bowl the sand was heated. After roasting the first batch, Jeebchi sprinkled a pinch of it on the fire as an offering and started the second batch. The new lava puffed perfectly, and the sight filled her with excitement. She placed the first batch in a tray and offered it to the children and her husband.

Seeing the bright white grains, Musna thought silently, “This woman is truly skilled. May God give such a wife to everyone? I realize now that what I never understood, I am tasting today. To feed one’s children is no small thing. Through women like her, even society can change.” The fragrance of the roasted lava spread

through the eastern breeze and filled the whole village with its aroma. Women from nearby houses came one by one to buy some lava. But Jeebchi gave the same answer to all, “First I will feed Girhat uncle, then anyone else.”

All afternoon Jeebchi kept roasting lava. Two baskets were ready. She stored both inside the house and covered one with a saree. Then she told Musna, “I am going to Girhat uncle. You stay here in the yard.”

Balancing the basket on her head, Jeebchi set out for Srikant’s house. Seeing the basket, Srikant smiled and teased, “You look happy, Lakshmi Maharani. What treasure are you carrying there? Let me see.”

Ignoring the question, Jeebchi smiled and went to the courtyard where Girhat’s wife sat. Placing the basket before her, she said, “Aunt, make a little sweet from this later, but for now mix some salt, pepper, and oil and fry it. I will take it to uncle.”

Taking the bowl of roasted lava, Jeebchi went to the doorway and placed it before Srikant. The lava shone white like pearls. He looked at it carefully. Jeebchi said, “Uncle, do not just look. Take a handful and taste it. It is bhent lava.”

Srikant took a handful and tasted it. The softness and flavour delighted him. He called to his wife in excitement, “We had never known such a wonderful thing. Blessed

is this woman from Kamalpur, whose skill and wisdom have brought such a lost treasure to light. She is a true goddess of the poor. Go, bring a set of saree and blouse from the chest. We will dress Jeebchi before she leaves. She is the goddess of the humble.

From that day on, Jeebchi kept roasting lava daily, and people came to her courtyard to buy it. In fifteen days she had gathered all the coins she had earned and counted them carefully before Musna.

Seeing the money, Musnas heart leapt. Laughter burst from his mouth. He looked straight at Jeebchi and began to count the bright coins with trembling fingers.

English Tranalation: Dr. Ram Ashish Singh

Dr. Ram Ashish Singh is the former principal and head of English department, H.P.S. College, Nirmali, a constituent unit of B.N. Mandal University, Madhepura (Bihar). Born on 5th June, 1950 at Biraul (Darbhanga) and obtaining his M.A (English) and Ph.D. degrees from L.N. Mithila University, Darbhanga he joined Nirmali College, Nirmali (now H.P.S College, Nirmali) as a lecturer in English in 1973 and retired from the service as the principal of the college in 2015. He got his Ph.D. degree in 1992 on his thesis The Central Ethos of R.K. Narayans Major Novels. Later he guided and

supervised Sri Ram Sudin Yadav’s research work ‘Contributions of Wilfred Owen to Modern Poetry: A Critical Re-assessment’ and Sri Virendra Prasad Yadav’s thesis named ‘A Comprehensive Critical Study of Voice of Feminism in the American Women Poets During 20th Century.’ He has to his credit the publication of a number of articles in reputed magazines and research papers in journals. He is blessed with keen writing aptitude. His books 'The Crippled' English translation of original Maithili novel 'Pangu' and 'Pangu: A Brief Critical Review' have received widespread acclaim from readers. He has written prefaces to a number of books of literature authored by other writers. Being a good orator, he takes active participation in educational, cultural and literary activities.

Original Maithili: Jagdish Prasad Mandal

Shri Jagdish Prasad Mandal is an inhabitant of Berma village of Madhubani district in the state of Bihar. He was born on 5th July, 1947. After obtaining his M.A. degrees in two subjects he opted to adopt agricultural work (vegetable farming) for his livelihood and live a social life. The stereotyped and feudal behaviour prevalent in society infuriated him and he started a struggle against it. Most of his time was spent in dozens of police cases and journey to jail. His life remained dedicated to

social service for about 35 years. After 2000 A.D. he took to literary writing. He is unparalleled in his constant literary contributions to Maithili literature. He remains a charismatic writer with his swift penning of about 130 books. Many genres of Maithili literature have been enriched with his realistic pictorial description of the village life. He stands as an emblem of renown and vitality in the sphere of Maithili writing. He is the only litterateur to be adorned with the honour of so many awards such as Tagore Literature Award, Sahitya Akademi Award, Videha Samman etc.

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**

3.2.Between Two Grindstones/ One Stroke, All Accomplished- Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story) Rameshwar Prasad Mandal (English Translation)

1.Between Two Grindstones/ 2.One Stroke, All Accomplished



Jagdish Prasad Mandal (Original Maithili Short Story)



Rameshwar Prasad Mandal (English Translation)

I

Between Two Grindstones

The first light of dawn had not yet broken when Dhirendraji came striding home, his footsteps echoing with a determined dham-dham. The weather was pleasant. It was the end of the month of Phagun, and unlike other years, there had been no cold wave. True, a breeze from the east was blowing, but its gentle pace made it feel comforting.

Only half an hour earlier, I had gone out for a walk, to take in the fresh morning air. The paths were smooth. Three years ago, a paved road had been built from the National Highway leading into the village, flanked on both sides by ponds. The pond on the southern side and the one on the northern side, where in the last flood they had broken the embankment, had been filled and overlaid with the pitch road. Now, there was no trace of muddy slush anywhere.

Before that road was made, during the monsoon, so much water would collect in the breached pond that it stayed until late winter. Even then, it never entirely stopped people from crossing, for they would simply cut across the adjoining paddy fields. There were few motor vehicles in the village, so even if water lingered, it did not truly

block movement. When a Tonga or rickshaw approached, passengers would dismount and walk across the field, while the empty vehicle was pulled over.

The field-path crossing belonged to someone or the other, and the landowner might protest, but travelers never paid much heed. This was not a one-time occurrence, it had been happening year after year until three years ago.

When Dhirendraji reached my house, I was not there. Upon inquiry, he learned that I had gone walking toward the south. Taking his younger son along, he set off down the southern road to find me. By the time I was returning from my walk, I spotted him. Though we were still a little distance apart, I recognized his face. A thought crossed my mind, why would Dhirendraji come so early in the morning? I knew him well enough to greet, but we had no deeper connection.

Step by step, I moved forward; step by step, so did he. As soon as we met, I greeted him.

“Namaskar, Dhirendra Bhai.”

He returned my greeting with equal warmth. “Namaskar. I came here just to meet you.”

With a touch of appreciative courtesy, I replied- “It is my good fortune to have your darshan. Let us go to my house. We can sit and talk at leisure there.”

Dhirendraji walked ahead, and I followed behind. Along

the way, we passed a pond. Around this pond, houses had sprung up on all four sides, and my own home stood on its eastern bank. Pointing toward it, I said- □Dhirendraji, you must have a pond like this in your village as well. But this one was not dug by the villagers, it was dug by a demon.□

Smiling, Dhirendraji replied-

□A widow or a demon, neither has disappeared. They still live among us in one village after another, just as they did before.□

The way he spoke was as if answering from his own inner reasoning, just as I had spoken. Yet his response left me uncertain about what exactly he meant. I kept silent.

By then we had reached near my house. At the doorway, I said- □Brother, this is the cottage of the poor. So do not trouble yourself with thoughts of honor or dishonor. It is my good fortune that someone like you has come to my home.□

In a firm tone, Dhirendraji said- □Gopikrishna, there is no such thing as fortune or misfortune. It is all part of the human play.□

I said- □First, have some breakfast and tea. Later, we will sit and talk in peace.□

Dhirendraji replied- □I never eat breakfast in morning. I

eat once in the day and once at night. So I will not have breakfast, only tea."

Insisting, I said- "You rarely come here, and today when you finally come, you say you will not have breakfast?"

Growing serious, Dhirendraji explained-

"Gopikrishna, I neither have a job that gives me a steady income nor my parents have pension I can rely on. So I live according to the means I earn for myself, and in that simplicity, I find my own contentment."

Hearing Dhirendraji's words, I felt convinced that his thinking was indeed of a high order. Just then my younger daughter, Kunti, arrived at the doorway carrying tea. Picking up a cup from the tray, I handed it to Dhirendraji and asked-

"Would you like some water as well?"

Dhirendraji said- "I am not really thirsty, but I will take a couple of sips."

As soon as he spoke, Kunti placed the tray on the low stool, went to the courtyard, and returned with a lota of water and a glass. She poured water from the lota into the glass and offered it to him. After drinking, Dhirendraji remarked- "Just as the water in your tube tastes fresh, so does the water from my own tube well."

He set the glass down on the stool, and we both began drinking tea. After two or three sips, Dhirendraji said-

“Gopikrishna, you have not even asked why I have come here.”

Defending myself, I replied- “Dhirendraji, is that something to ask? We studied together in high school, we are friends. When a friend comes to visit another friend, how could I ask why you have come?”

By the time we finished our tea and set the cups back on the tray, I had taken out my betel box and begun to prepare a paan. Dhirendraji said- “Gopikrishna, I do not eat paan. You have it yourself.”

Feigning dismay, I said- “Dhirendraji, here in Mithila, paan and makhana are linked with our culture. Why should you neglect it?”

Without the slightest change in expression, Dhirendraji replied- “I avoid paan because it damages the teeth. The cultural point you have raised will not be upheld merely by chewing paan and eating makhana. Culture is like an ornament of life, something that adds beauty and dignity to living. And for that, our attention should be elsewhere.”

I asked- “What do you mean, Dhirendraji?”

He explained- “There is a saying in our villages that loose soil crumbles easily. Petty ideas will not be replaced simply by reciting grand ones. The culture of Mithila is one of universal brotherhood, yet in recent times we have

dug so many unnecessary pits and ditches that we have damaged the very form of our culture. Like children who repeat the word culture over and over without understanding it, we get nowhere.□

I chewed my paan and offered two cardamoms to Dhirendraji. After placing one in his mouth, he said- □Today, in your village, meaning Bansbitti, there is a plan to hold a general assembly.□

Until that moment, I had no knowledge of this. Whether the idea had just occurred to him or someone had told him earlier, I could not tell. So what could I say? I simply replied-

□Whatever responsibility you give me, I will carry it out, will I not?□

Dhirendraji said- □Gopikrishna, the public here is asleep. They take pleasure in their slumber, and the looting class, like a mischievous goat kid, keeps patting them on the head to lull them into even deeper sleep.□

I could not fully grasp his meaning, so I asked- □What do you mean, Dhirendraji?□

He explained- □First, people cling to the glories of the past, and second, the clever members of the looting class encourage this attachment so much that people stop looking at the present altogether. Of course, everyone should know about the past, but to measure oneself

solely by it and think of oneself as perfect is to deceive one’s own life.”

Still not entirely understanding, I said-

“Dhirendraji, please make it clearer.”

Hearing this, Dhirendraji reflected for a moment and said-

“Gopikrishna, just as time is divided into three periods, life too can be seen in three phases. The past is what has already gone by, which we call history. The present is the period we are living in right now. And the future is what is yet to come, the kind of life we want to create for ourselves.”

In grammar, I had studied past, present, and future, but always as measures of time. I had never thought of them as measures of life. This thought now struck me, and I said-

“Please make it even simpler, Dhirendraji.”

Dhirendraji said- “In our society, that is, among the people here, just as there are retellings and interpretations of the Mahabharata, there are also those of the Ramayana. People try to model their lives on these stories and indeed wish to do so. But just as the Ramayana belongs to a bygone era, so does the Mahabharata. These are accounts of life from thousands of years ago. Day by day, minute by minute, time moves

forward on its own course. Life today should match the pace of the present age, yet that is not happening. People have developed a habit of either keeping themselves fixed in the past or getting lost in dreams of the future. There is not much time now to speak further. First, let us complete the work for which I have come, and then we can continue our discussions.□

He had barely finished when Duniyalal arrived. Duniyalal was my neighbor and also a graduate. As soon as he came, I said-

□Duniyalal, Dhirendraji is holding a general assembly in our village today, so you should assist him.□

Duniyalal replied- □Gopi Bhaiya, I am ready to do whatever you say, but first please introduce me to him.□

Hearing his words, I said- □Duniyalal, Dhirendraji is my high school friend. It is true that we have met today after fifteen years since high school, so Dhirendraji will tell you about himself in that gap. But I can tell you what our friendship was like back then.□

Duniyalal listened to me with interest, his ears alert, and then turned his gaze toward Dhirendraji, studying his face. Dhirendraji also looked back at him. I continued-

□Duniyalal, we both studied at the same high school. Dhirendraji was a science student, and I was an art student. Whenever a teacher was absent, Dhirendraji

would take the class. The way the teachers taught, he would teach in the same way.□

Duniyalal said- □In that case, Dhirendraji must be quite a remarkable man.□

I said- □In the matriculation board examination, Dhirendraji had secured a good rank. What happened afterward, he will tell you himself.□

Duniyalal shifted his gaze from me to Dhirendraji. Dhirendraji said- □After matriculation, I enrolled at L. S. College. At that time, Mithila University had not yet been established, though there was much discussion about its formation. I passed Intermediate Science in the first division, with first rank. I took Physics as my honors subject. In B.Sc. too, I secured first place with honors, and the same in M.Sc.□

In between, Duniyalal exclaimed- □Wonderful, wonderful.□

Dhirendraji continued-

□Shortly after completing my M.Sc., I was appointed as a scientist at the government institute ISRO. After working there for six months, the institute dismissed me, declaring me insane. I left from there.□

Duniyalal asked- □If the institute dismissed you calling you insane, why did you not file a case?□

Dhirendraji replied- □Who is not mad in some way? Why

should I get entangled in the snare of unnecessary cases and lawsuits? After leaving there, I got a job in the Physics Department of Darbhanga College. After working there for a year, they too dismissed me, again calling me mad.□

Duniyalal asked- □What do you do now?□

Dhirendraji said-

□I live in the village. My parents have grown old. I am the only one in the household. I have a wife and a son. Now I don□t want to do any jobs and service again. I will do social work.□

Duniyalal asked- □Will you be able to find satisfaction in social work?□

Dhirendraji replied- □Why would I not? Only those fail to find satisfaction in social work who have no issues before their eyes. But I can see the issues clearly. I see with my own eyes that society is so deeply asleep that it cannot even discern what is good or bad for itself. Helping it to understand the difference between good and bad, that is my service. With that thought in mind, I have taken this step.□

What Duniyalal understood of Dhirendraji□s ideas, and how much he grasped, only Duniyalal would know. Yet in my own mind I felt that the purpose for which Dhirendraji was trying to take a step forward was indeed

something society needed. At that moment, Dhirendraji said-

“Gopikrishna, it is not good to spend time just sitting and talking. Let us first go around the village and inform as many people as possible that there will be a general assembly at two o’clock in the afternoon, and invite them to take part.”

The three of us, Dhirendraji, Duniyalal, and I, set out toward the village. We had taken only ten steps when we met Shyam Uncle on the road. Pointing toward Dhirendraji, I said to Shyam Uncle- “Uncle, his house is in Khairboni. He is our neighbor. Today at two o’clock there will be a general assembly in the village, so please be there.”

Shyam Uncle was about to respond when, in the meantime, Dhirendraji said- “You are a respected elder in every way, so please take the responsibility of presiding over today’s meeting.”

After a brief pause, Shyam Uncle said-

“If there is a meeting in the village, I will certainly be there.”

Dhirendraji said- “Gopikrishna, it will be difficult to go door to door and inform everyone, especially as time is short. Instead, let us go through the lanes, telling two or four people in each, and keep moving.”

Until now, only a handful of active individuals in the village had participated in social or political activities. The rest had kept their distance. Why they stayed away had many reasons, which we will not go into now. For the present, it is enough to say that after hearing Dhirendraji's ideas, even those who had never attended a general assembly or any public meeting before agreed to come.

By eleven o'clock, the three of us had gone around the entire village. We told everyone we met and then returned home. Once there, I said to Dhirendraji,

"Dhirendraji, take a bath here, have your meal, and rest for a while. Later we will go to the general assembly together."

Dhirendraji replied- "My home is not far. It will take fifteen or twenty minutes to go and the same to return. If I go, I can tell my wife that I will be attending the meeting and might be a little late, and I can also see my parents and remind them to take their medicines."

Dhirendraji left. After he had gone, Shyam Uncle came and said-

"Gopikrishna, since it is a village meeting, we should be the ones to arrange for it."

Hearing his thoughts, I said- "Uncle, that is indeed how it should be. You are an experienced man, how do you

think we should proceed?"

Shyam Uncle said- "If we had known ten or fifteen days earlier, we could have planned everything properly. But since this was decided in a hurry, at the very least we should arrange seating for the people, a microphone, and tea and refreshments for Dhirendraji."

I said- "Dhirendraji is my friend, so I will arrange the tea and refreshments here at my place. You all can arrange the seating for the gathering."

Shyam Uncle said- "I have three mats of my own, and Ruplal has two large durries. If we borrow his, we can spread all five mats and durries in front of the school. That would be a good place to hold the meeting."

In the middle of this, Duniyalal said- "Shyam Uncle, I will take that responsibility."

Shyam Uncle looked at me and said- "Gopikrishna, since the general assembly is to be held in our village, we bear the responsibility to ensure that it runs smoothly. People should not have the chance to laugh at us."

I replied- "When we all work with full commitment, that will not happen. The program is at two o'clock, so in the time that remains, we can finish all the preparations."

Shyam Uncle said to Duniyalal,

"Duniyalal, come with me. I will speak to Ruplal, and

you go with someone to fetch both my mats and Ruplal□s durries and spread them neatly in front of the school.□

I added- □There are several people in the village who own his loudspeakers. Choose the best one and ask the owner to play the national song from the start and make announcements in between.□

Shyam Uncle said- □Sohan□s speaker is the best. He bought it recently, and for a public meeting he will not charge anything.□

I said- □Uncle, he is your man.□

Shyam Uncle replied- □When the village is ours, are the people of the village strangers? That responsibility too falls on me.□

I said- □Uncle, we have only two to two-and-a-half hours left. In that time, we must also bathe, eat, and get ready, besides arranging the mats and the microphone. So let everyone get to their own tasks.□

At half past one, Dhirendraji arrived with Manesar, Rasiklal, and Pradeep. Taking all four with me, I went to the school. People had begun to gather in ones and twos. There were no women, but some female students from the schools and colleges had also come. Seeing the crowd grow, Dhirendraji□s heart was filled with enthusiasm.

The program began. Shyam Uncle took the chair as

president, and at that moment, Dhirendraji said- "I would like to request the villagers that if anyone has a question in mind, they should raise it."

I said- "Dhirendraji, this is the first day such a program is being held in the village. So let us not put the villagers on the spot. Please share your ideas clearly so that everyone can understand them."

Shyam Uncle said- "Friends, Dhirendraji is presenting his thoughts, so, everyone, listen with attention."

Dhirendraji stood up and said- "Friends, Kabir Das once said- "Watching the grinding mill, Kabir weeps. Between the two grinding stones, not a single grain remains whole." The flow of time is the most powerful force, and it is this that Kabir pointed toward. Yet people fail to truly understand it. We must reflect carefully on what these two grinding stones are and how people are crushed between them.

"Think of it this way: on one side is the king, and on the other is the pauper. The king is full to the brim with everything, while the pauper, the beggar, has nothing except his own body. Why is it that one human being is a king and another a beggar, when both are human? This is the inequality among people in society.

"Just as on one side are the wealthy, whose lives are filled with every possible possession, from homes and

food to every luxury, so on the other side there are people who have nothing at all. No food in their stomachs, no clothes on their bodies, no shelter over their heads, and no means to meet the basic needs of life.

This inequality is not new. Since the time human beings first appeared on earth, it has existed in one form or another. I will not speak here about the history of human origin. For now, it is enough to say that from the smallest village to the entire world, this inequality is everywhere.

In the midst of this inequality, two classes have emerged: the oppressor and the oppressed. Because of this, human life has become worse than the life of animals. It has affected everything, including wealth, religion, desire, and liberation. Today, we have gathered here to understand this inequality clearly. Until such inequality is removed, human well-being is impossible. Though a person may be human in form, his life will remain far from what it means to live as a human being.

In thought and speech, one may say that all people are human, that everyone's life should be lived with dignity, that everyone's needs should be met, that all children should be educated, that society should be harmonious. But these will remain nothing more than words meant to please the mind.

"Until harmony enters life, until everyone has the means to live, the situation will remain as it is today, where a handful of people enjoy abundance while the vast majority live in poverty. I appeal to all of you to recognize yourselves and fulfill your responsibilities. That is all I have to say today."

2.

One Stroke, All Accomplished

For the past seven or eight days my mind has felt detached, estranged both from family and from society. This evening, after finishing my daily routines, I sat on the verandah and the thought rose within me that death would be better than such a life.

Just then my wife came with tea. I had not the slightest desire to drink it. She placed the cup on the low table before me and stood by my side. I knew she wished to talk. She would have spoken as on other days, recounting the events of the day, what tasks had been completed, which were left half done, and which had not been done at all.

I picked up the cup of tea from the table. Though my heart was not in it, habit compelled me to lift it to my lips. Every sip felt tasteless, as though all flavour had been drained away. Still, I forced myself to drink.

Seeing her standing before me, I understood clearly that she wanted to speak, but I had not the faintest urge for conversation. So I kept my mouth shut. Somehow I emptied the cup, set it back on the table, and she carried it away. Not a single word passed between us.

My mind had grown so bitter from the behaviour of family and of society alike that it seemed death was better than life. What needless entanglement had I fallen into? Neither the conduct of my own kin was good, nor that of the people in the community. To live in such a family or in such a society was to lead a life worse than that of an animal.

Inside, I was so unsettled that I felt I could die at that very moment. The thought kept rising again and again that death would be better than this life. Silently I began speaking to God in my heart, asking Him to grant me a single cubit of space. But what difference would my wishes make?

At last, when I could bear it no more, I thought that the night was still young. The first dusk had passed, the second had only just begun. Why not go to Manmohan Uncle and share all that weighed upon me? He was older and wiser than I, and his life experience was far greater. Surely, he would suggest some way forward.

In the meantime my wife, perhaps for the second time,

appeared at the door with the thought of talking. But my heart, hardened by the ways of both family and society, had lost all desire to live even for another moment. She stood in the doorway before me, yet I did not even feel like looking at her. She too said nothing, though she knew well why she kept silent.

I rose quietly from the bench and set out for Manmohan Uncle’s house. As I was leaving, my wife asked- “Where are you going in the dark?”

I replied- “Nowhere far, just to have a word with Manmohan Uncle.”

She asked- “How long will you be?”

I said- “It will not take long. I will stand there, exchange a few words, hear his reply, and return.”

My wife went silently back into the courtyard, and I went on my way to Manmohan Uncle’s. I set out, but such darkness spread before my mind that nothing was clear. His house was not far from mine, so I felt no difficulty in going. In a rush of determination, I had left, but on the path sudden thoughts began to crowd my mind. I could not tell whether my feet were falling on the road or off it. My eyes felt shut, my senses dulled, and yet I kept moving forward.

I had no idea when I passed his house. Only when I had gone nearly two fields beyond did I suddenly come to my

senses. Realising my mistake, I turned back toward his house. As I drew near, many questions kept stirring in my mind. At last I reached his doorway.

Manmohan Uncle was telling his wife-

“Just as everyone has his own duty, everyone also has his own limits. One must be mindful of those limits. Why step into another’s sphere and interfere without cause?”

Sudhiya Aunty, his wife, had been scolding her daughter-in-law. The reason was this: the little boy, her grandson, had reached for a glass of milk kept by the stove for making tea. As he tried to lift it to drink, it slipped from his hands and spilled. The boy’s mother, Kumudini, struck him twice, making him cry. Sudhiya Kaki became upset and said- “Why did you hit the child so harshly?”

Still irritated about the spilt milk, Kumudini replied- “If I don’t discipline a headstrong child like this, he will never give up his wilfulness.”

That was enough to spark an argument between mother-in-law and daughter-in-law, and Manmohan Uncle, having heard the quarrel, was trying to calm his wife when I arrived.

Grief had so dulled my senses that I forgot even to greet him. As soon as he saw me, he asked-

“What brings you here at such an hour, Ramgulam?”

His voice seemed to wake me from my daze. I said-

□Uncle, I bow to you.□

He blessed me and asked-

□May you be well. But why have you come out in the dark?□

I said- □Uncle, when I see the ways of my family, and when I see the ways of the people in society, I feel death would be better than living such a life.□

How my words struck him only he would know, but he replied- □Ramgulam, do you think anything will happen just because you have decided it? Whoever is born on this earth will one day die. No one will consult you in the matter. So while you are alive, keep yourself alive.□

My heart was already heavy, and perhaps I lacked the mind to take in his meaning. Inside, I began to bristle with the thought: was the question I had come to ask Uncle the one I truly asked, or was it what he had said that I failed to understand and should have asked about?

Seeing me lost in thought, Manmohan Uncle said- □It is still evening. It is not yet so late that it is time for food or for sleep. Sit down quietly and tell me what you came to say.□

I replied- □Uncle, in the family I see that there is no love between anyone. Everyone keeps a grudge against the other. In society it is the same. People always say

that service to others is the highest duty, yet they are constantly trying to pull each other down. Seeing this, I feel the same disgust toward society as I do toward my family. It makes me think that death would be better than living in such a way, witnessing such conduct every day.□

When he heard me, Manmohan Uncle pressed his lips together and began to smile. The smile stirred irritation in me and I wondered why he was smiling, but I said nothing. Then he spoke.

□Ramgulam, do you understand that a human being is incomplete?□

I began to think about his words. Until now I had believed that in both my family and my village I was the wisest, that what I understood no one else could see. Uncle□s thought seemed to be the opposite, so I asked-

□What do you mean by incomplete, Uncle?□

He said-

□As an individual, a human being is incomplete, but collectively, society is complete.□

I turned this over in my mind and could see no real difference between society and the individual. A society is a gathering of individuals, and an individual is a part of that gathering. The person is tangible, society intangible. When my thinking could not reach a

conclusion, I asked-

“How is that, Uncle?”

As we were talking, Sudhiya Kaki came to the doorway with tea. At home I had drunk tea without wanting it; my mind had been too full of worry for it to bring any satisfaction. Here, I truly wanted to drink. Even the disgust I had been feeling toward family and society seemed to have softened. We both began to drink our tea.

After finishing, Manmohan Uncle handed his cup back to Sudhiya Kaki and said-

“Ramgulam, when you look at yourself with the whole world in mind, you will see that just as a single drop of water exists within the vast ocean, so is the place of the individual within society.”

I could not fully grasp Manmohan Uncle’s thought, so I said-

“Uncle, please explain a little more clearly.”

He asked-

“Have you been able to fulfil all your needs in life entirely on your own?”

I thought for a moment and realised that neither I nor anyone else meets all their needs alone. Still, unsure what he was getting at, I said-

“Uncle, please explain it even better.”

He said-

“You do your farming and produce food from your own fields, but for other things you have to go to the shop, do you not?”

“Yes, of course I do.”

“And whatever you get from the shop is made by someone, is it not?”

“Yes, someone must make it.”

“When you fall ill, you go to the doctor for treatment, and the illness is cured, is it not?”

“Yes, I do.”

“You may fall ill yourself, but who cures the illness?”

“The doctor.”

“That,” he said- “is the collective body we call society. Society is made up of people of every kind, doing every kind of work. That is why society is complete, while the individual is incomplete.”

I said-

“Uncle, the way the people in my family and in society behave has burned me so much that I feel both the family and society can go straight into the cooking fire.”

Hearing this, Manmohan Uncle pressed his lips together and laughed heartily. Seeing him laugh only sharpened my irritation, but I swallowed it.

Then he said-

□Ramgulam, there are many kinds of illnesses that afflict society.□

At his words, I felt a faint stirring within, and suddenly I lifted my eyes to meet his. As soon as our eyes met, he seemed to understand and continued-

□Ramgulam, in society there is looting in the name of religion, exploitation in the name of social custom, exploitation in the name of divine wrath, exploitation in the condition of economic distress, and exploitation the moment one goes against the signals of landlord or master. There is also unrestrained exploitation of labour. All this has turned the colour of society dull and distorted. That is why you find society□s behaviour so low.□

Some of Manmohan Uncle□s thoughts I understood, and some I did not. So I said-

□And then?□

Clarifying his idea, Manmohan Uncle said-

□Just as the body has many organs, all working together to keep it alive, so it is with society. In the body there are healthy organs and there are weak ones, yet together they keep it in motion. In the same way, everyone has their own role.□

Without thinking, I said-

□Yes, there is such a role.□

Whether my answer brought him satisfaction or stirred some thought in his mind, only he would know. Smiling, he said-

“Ramgulam, you can see in the village that some people farm, some keep cattle, some are teachers, some are traders.”

I cut in-

“Yes, that is true.”

Manmohan Uncle said-

“Their work may be different, but they are all called part of the same village community, are they not?”

I said-

“Yes, they are part of the same society.”

Manmohan Uncle said-

“Each kind of work has its own importance, and everyone’s needs are met through one another. No single person can do every job alone, and no one can perform every task.”

I said-

“Yes, that is not possible.”

Manmohan Uncle said-

“According to his own interests, everyone should do one task suited to his own strength. This way one part of society is fulfilled, and harmony remains among all. That is what is meant by ‘One stroke, all accomplished.’ ”

Hearing this, my mind did agree, but when I looked again at the ways of my family and the ways of society, my anger would rise once more. My thoughts would not settle. I said-

"Then, what should one do?"

Smiling, Manmohan Uncle said-

"Each of us is our own master, each of us has our own responsibility. Just as you have yours, so do I have mine."

I said-

"It is late enough for the evening meal. I will be going now."

I rose to leave, but Manmohan Uncle said-

"Ramgulam, keep your mind steady. The more unsteady your mind is, the more unsteady society will seem to you, and the more unsteady your family will become."

अपन मंतव्य editorial.staff.videha@zohomail.in **पर पठाउ।**



विदेह लिटरेचर फेस्टीवल
রিদেহ নিঠরেচর ফেস্ঠীরন
WWW.VIDEHA.CO.IN
WWW.VIDEHA.CO.IN
२०००- २०२५
২০০০- ২০২৩
Maithili
LITERATURE
(c)२०००- २०२५। विदेह: प्रथम मैथिली पाक्षिक ई-पत्रिका ISSN 2229-547X
(c)২০০০- ২০২৩। রিদেহ: প্রথম মৈথিনী পাক্ষিক ঞা-পত্রিকা ISSN 2229-547X